



# ગુજરાતી પત્રિ

ગુજરાતની સાહિત્યાની માટે એક અનુભૂતિ

# गुलामगिरी

जोतीराव गोविन्दराव फुले

अनुवादक/सम्पादक  
डॉ. विमलकीर्ति



वाणी प्रकाशन



वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

शाखा

अशोक राजपथ, पटना 800 004

फ़ोन : +91 11 23273167 फैक्स : +91 11 23275710

[www.vaniprakashan.in](http://www.vaniprakashan.in)

[vaniprakashan@gmail.com](mailto:vaniprakashan@gmail.com)

[sales@vaniprakashan.in](mailto:sales@vaniprakashan.in)

GULAMGIRI

by Joteerao Govindrao Phooley

*Translated/Edited by Dr. Vimalkirti*

ISBN : 978-93-5229-640-8

Criticism/Dalit Literature

© 2017 वाणी प्रकाशन

© हिन्दी अनुवाद : डॉ. विमलकीर्ति व वाणी प्रकाशन

प्रथम संस्करण

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से  
लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

वाणी प्रकाशन का लोगो मक्कबूल फ़िदा हुसेन की कूची से

सामाजिक न्याय के लिए  
और  
मंडल आयोग को लागू करके  
जिन्होंने अपनी सत्ता को  
दाँव पर लगा दिया  
और जिन्होंने  
मुर्दा कौम में  
जान डालने का प्रयास किया  
वे महानायक  
विश्वनाथ प्रताप सिंह  
तथा  
इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में  
जिन-जिन लोगों का योगदान रहा  
उन संघर्षशील सभी साथियों को  
समर्पित।

—विमलकीर्ति

## यह संस्करण

महामानव ज्योतिबा फुले का सम्पूर्ण साहित्य आधुनिक भारतीय समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक क्रान्ति की दृष्टि से, सामाजिक, वैचारिक, धार्मिक परिवर्तन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है, इस बात को सभी मानववादी, समाजवादी, समतावादी, सामाजिक न्यायवादी, लोकतन्त्रवादी और धर्मनिरपेक्षतावादी विचारक स्वीकार करते हैं। ज्योतिबा फुले का साहित्य और विचार आज भी प्रासंगिक है। ज्योतिबा फुले का मूल साहित्य वास्तव में मराठी में है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से वह हिन्दी में भी उपलब्ध है और हिन्दी जगत में उसकी काफी प्रशंसा भी हुई है।

ज्योतिबा फुले के सम्पूर्ण साहित्य में एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ‘गुलामगिरी’। यह ग्रन्थ 1873 में प्रकाशित हुआ था। मतलब यह ग्रन्थ ज्योतिबा फुले ने आज से 143 साल पहले लिखा था और प्रकाशित किया था। उस समय यूरोपियन देशों में काले लोगों की गुलामी का प्रश्न भयंकर स्वरूप में था और काले लोगों की गुलामी के विरोध में संघर्ष भी जोरों पर था। जिस प्रकार यूरोपियन देशों में काले वर्ण के लोगों को गुलाम बनाकर रखने की प्रथा थी उसी समय भारत जैसे सनातन देश में भी गुलामी की प्रथा किस स्वरूप में थी। इस बात को ज्योतिबा फुले ने अपने इस ‘गुलामगिरी’ ग्रन्थ में स्पष्ट रूप में रखा है। भारत में प्राचीन काल से गुलामी की प्रथा का स्वरूप किस प्रकार का रहा है, इस बात को समझने के लिए ज्योतिबा फुले का यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है।

‘गुलामगिरी’ के कई हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुए हैं, फिर भी इस ग्रन्थ को पढ़ने वालों की संख्या में कमी नहीं आयी है। वाणी प्रकाशन ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। वाणी प्रकाशन हमेशा ही उदारवादी विचारों का समर्थक रहा है।

धन्यवाद।

—डॉ. विमल कीर्ति

18 जुलाई, 2016

अन्नाभाऊ साठे स्मृतिदिवस

## निवेदन (प्रथम संस्करण से)

महात्मा जोतीराव फुले के दर्शन तथा चिन्तन से आधुनिक भारतीय समाज में क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है, इस तरह की मान्यता रखने वाले कई सामाजिक कार्यकर्ता, विद्वान, समाजशास्त्री और राजनीतिज्ञ हैं। इसलिए पहले कभी इतना अध्ययन नहीं हुआ जो आज महात्मा फुले के विचारों तथा दर्शन के बारे में हो रहा है। आज उनके विचारों की आवश्यकता सारे देश के लिए है। क्योंकि भारत जैसे परम्परावादी, जातिवादी, धर्मान्ध और ब्राह्मण-पण्डि-पुरोहित तथा बनिया-भांडवलदारों के वर्चस्व में दबे हुए देश में सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति के बगैर हम न तो यहाँ सही ढंग से लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षतावादी समाज तथा शासन की स्थापना कर सकते हैं और न तो लोकतन्त्रवादी, समाजवादी, धर्मनिरपेक्षतावादी मूल्यों की स्थापना कर सकते हैं।

लेकिन सवाल यह आता है कि यहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति का आधार दर्शन-चिन्तन क्या होना चाहिए? इस सवाल का जवाब हमारे यहाँ केवल फुले-अम्बेडकरवाद के पास है। यहाँ केवल आर्थिक परिवर्तन से न तो समाज परिवर्तन होगा और न तो सत्ता परिवर्तन। महात्मा फुले इस देश में दोनों चाहते थे। समाज परिवर्तन और सत्ता परिवर्तन भी। इस दृष्टि से यदि हम इस किताब की ओर देखें तो यह ‘गुलामगिरी’ किताब दुनिया की क्रान्तिकारी किताबों में से एक नहीं बल्कि सर्वश्रेष्ठ और मौलिक है। इस ‘गुलामगिरी’ किताब में उन्होंने भारतीय समाज का जो स्वरूप रखा है, और जो विश्लेषण दिया है उसको कोई नकार नहीं सकता, फिर कोई उसका समर्थक, अनुयायी हो या न हो। उन्होंने इस किताब में जो कुछ लिखा है सही है। इसलिए उनकी आलोचना करने वाले समकालीन नेता, लेखक, पत्रकर्ता का आज कोई नाम लेवा भी नहीं रहा है लेकिन महात्मा फुले के विचार तो दिन ब दिन धर्म, जाति, पन्थ, भाषा, प्रान्त, लिंग की सीमाओं को पार करके फैल रहे हैं।

म. फुले का दर्शन सत्ता, सम्पत्ति और पद प्राप्ति का नहीं है। वह तो सामाजिक क्रान्ति का दर्शन है, व्यवस्था परिवर्तन का दर्शन है। इसीलिए व्यवस्थावादी, यथास्थितिवादी, जातिवादी, धर्मान्धतावादी, ब्राह्मण-बनियावादी लोगों को म. फुले कभी अच्छे नहीं लगे। लेकिन आज हमारा म. फुले के विचारों के बगैर गुजारा नहीं है। आज जहाँ मण्डल आयोग के समर्थन और विरोध की लड़ाई हो रही है, उस समय इस किताब की प्रासंगिकता और भी है। और इसीलिए मैंने इस किताब के हिन्दी अनुवाद को हिन्दी पाठकों के सामने रखा है। इस किताब को पाठकों तक पहुँचाने में जिनकी विशेष मदद हुई वे हैं मोहन कोठेर, अशोक भारती (दिल्ली), विमलसूर्य चिमनकर, नितिन चौधरी, और पुष्पा विमलकीर्ति तथा मेरी लड़कियाँ कुमारी नोरा, कुमारी रोझा और कुमारी जागृति, ये सभी अपने हैं।

-विमलकीर्ति

## प्रस्तावना (प्रथम संस्करण से)

उन्नीसवीं सदी विश्व इतिहास में महान लोगों, आनंदोलनों और परिवर्तनों की जननी के रूप में पहचानी जाती है। भारत में भी इस दौरान अनेक ऐसे आनंदोलनों और महान व्यक्तियों ने जन्म लिया जिन्होंने विदेशी सत्ता, जड़वत सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और प्रतिक्रियावादी ढाँचे को चुनौती दी। महात्मा ज्योतिराव गोविन्दराव फुले ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने उन्नीसवीं सदी में जातिगत शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार पर टिके समाज को निर्णायिक चुनौती दी। पिछले साल ही 28 नवम्बर को हमने उनकी सौवीं पुण्यतिथि मनाई थी।

उन्नीसवीं सदी के भारतीय समाज को जाने बिना हम महात्मा ज्योतिराव फुले की इस पुस्तक ‘गुलामगिरी’ का महत्व नहीं समझ पाएँगे। उन्नीसवीं सदी का भारतीय समाज एक ऐसा समाज था जो छुआछूत, जन्माधारित विशेषाधिकारों पर टिका था। तथाकथित ऊँची जाति के लोगों के पास ही सारे हक थे जबकि समाज का 75 फीसदी से भी अधिक तबका जिन्हें आज की परिभाषा में हम पिछड़े या ओबीसी और अनुसूचित जातियाँ कहते हैं, शूद्र और अद्वृत थे। वह लिखने-पढ़ने, कमाने, दुकान लगाने यहाँ तक कि सड़कों पर सम्मान से चलने के हक से भी वंचित थे। ज्योतिराव ने स्वयं अपनी स्थिति बयान करते हुए बताया है कि एक बार जब वह अपने ब्राह्मण मित्र की बारात में शामिल थे तो उन्हें पहचान लिए जाने पर परी बारात ने उनकी जमकर पिटाई की थी। उनका अपराध था कि वह माली जाति के थे, और वह ब्राह्मण की बारात में चले गये थे।

ऐसे में समाज को बदलना आज के मुकाबले कहीं ज्यादा कठिन था। ज्योतिराव के समय में जाति प्रथा और धर्म की व्यवस्था के खिलाफ बोलना मौत को दावत देने से कम न था। ऐसे समय में जबकि सेना पर टिकी विदेशी सरकार सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने में डरती थी, शूद्रों और अद्वृतों के सर्वांगीण विकास की तो छोड़िए वह उन्हें शिक्षा देने से भी डरती थी। ज्योतिराव फुले द्वारा सामाजिक क्रान्ति की शुरुआत सामाजिक न्याय व सामाजिक समता के संघर्ष के लिए प्रेरणादायी है। ‘गुलामगिरी’ ज्योतिराव फुले का ही नहीं हमारा भी घोषणा-पत्र है।

**मूलतः** 1872 में प्रकाशित ज्योतिराव फुले की पुस्तक ‘गुलामगिरी’ तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ शूद्रों और अद्वृतों का घोषणा-पत्र था। जिस तरह कार्ल मार्क्स ने 1848 में पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक समाज के सबसे ज्यादा शोषित और उत्पीड़ित समाज के अधिकारों को रेखांकित करते हुए ‘कम्यूनिस्ट घोषणा-पत्र’ निकाला था, उसी तरह ‘ज्योतिराव’ ने ‘गुलामगिरी’ प्रकाशित कर भारत के सबसे अधिक शोषित एवं उत्पीड़ित तबके अद्वृतों एवं शूद्रों के अधिकारों की घोषणा की।

पुस्तक की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा “सैकड़ों साल से आज तक शूद्र-अतिशूद्र, पिछड़े, अद्वृत समाज जब से इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता कायम हुई तब से लगातार

जुल्म और शोषण के शिकार हैं। ....यह लोग अपने आपको ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहित की जुल्म ज्यादतियों से कैसे मुक्त कर सकते हैं, यही आज हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सवाल है।” यह ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। मेरी राय में आज हम लोग जो सामाजिक न्याय और सामाजिक समता और मण्डल आयोग को लागू करने की लड़ाई लड़ रहे हैं, उनके लिए भी महत्वपूर्ण सवाल यह है कि जाति पर टिके इस समाज में तमाम सामाजिक, आर्थिक साधन और संसाधन कुछेक जातियों द्वारा कब्जाए हुए हैं, दलितों और पिछड़े वर्ग तक कैसे पहुँचाए जाएँ?

16 परिच्छेदों में बँटी इस पुस्तक के प्रत्येक परिच्छेद में ‘ज्योतिबा’ ने अपनी अनोखी शैली बातचीत या कहें विचार विमर्श शैली में अलग-अलग मुद्दों को उठाया है। लेकिन वह इन मुद्दों को एक-दूसरे से अलग नहीं मानते। ‘गुलामगिरी’ की ‘शुरुआत’ वह दलितों और पिछड़ों को कैसे ‘गुलाम’ बनाया यानि उन्हें उनकी सम्पत्ति, पूँजी, जमीन और शिक्षा से कैसे वंचित किया से शुरू करते हैं। वह ‘पुरुष सूक्त’ का हवाला दिये बिना धर्म ग्रन्थों की जाति व्यवस्था के उदय की बातों को मौजूदा विज्ञान के सत्यों के साथ परखते हैं। परिच्छेद नौ तक उन्होंने विभिन्न अवतारों, सुर-असुर युद्ध की चर्चा कर तार्किक रूप से उसे दलितों और पिछड़ों की ‘गुलामी’ की शुरुआत से जोड़ा है।

परिच्छेद ग्यारह से ज्योतिबा ने अपने काल में जारी दलितों और पिछड़ों के शोषण और उत्पीड़न को उजागर किया है। शिक्षा विभाग में ब्राह्मणों के वर्चस्व को लेकर उनके प्रेक्षण और निष्कर्ष आज भी सत्य प्रतीत होते हैं। तत्कालीन प्रेस के विषय में उनके कहे गये यह शब्द ‘सभी मराठी अखबारों के सम्पादक ब्राह्मण होने की वजह से उनको अपनी जाति के विरुद्ध लिखने के लिए हाथ नहीं चला रहे।

‘मण्डल आयोग’ की रपट लागू होने पर इस देश की प्रेस द्वारा अपनाये गये रूपये से साफ जाहिर होता है कि उनके युग और आज के युग में बहुत अन्तर नहीं आया है।

अन्त में ‘गुलामगिरी’ में ज्योतिबा ने क्रान्तिकारी होने का सही प्रमाण देते हुए खुद कुछ बातों को अपने जीवन में उतारने का निर्णय किया है। उनके अनुसार उस समय कहे गये उनके विचारों से आज सिर्फ लड़ाई की रणनीति में परिवर्तन आ गया है और पुरानी व्यवस्था अभी भी आधुनिकता का सम्भान्त लबादा ओढ़े जारी है।

ब्राह्मणों के जिन प्रमुख धर्म ग्रन्थों के आधार पर शूद्रादि, अतिशूद्र लोग ब्राह्मणों के गुलाम हैं और उनके कई ग्रन्थों में हमारी गुलामी के समर्थन में कई लेख लिखे हुए मिलते हैं, उन सभी ग्रन्थों का, धर्म शास्त्रों का उसका जिन-जिन धर्म शास्त्रों से सम्बन्ध होगा, उन सभी का हम निषेध करते हैं।

यह भारतीय समाज की अजीब विडम्बना ही है कि हमारे यहाँ बौद्धिकता के छद्म आवरण में छिपी भावनाओं को तो शीर्षस्थ स्थान पर स्थापित किया जाता रहा, लेकिन यथार्थपरक बौद्धिकता को निकृष्टतम ठहराकर त्याज्य घोषित किया गया। वस्तुतः दिल को दिमाग से, भक्ति को ज्ञान से और विश्वास को तर्क से श्रेष्ठ मानने की जो सामान्य प्रवृत्ति इस देश के लोगों को निहित स्वार्थी तत्त्वों द्वारा घोट-घोट कर पिलाई गयी उसके चलते शद्र या अन्य निम्न जातीय व्यक्ति की सोच पर चिन्तन मनन न होना उसकी एक स्वाभाविक परिणति है। कबीर, रैदास उसी बौद्धिक पक्षपात के शिकार रहे और ज्योतिबा फुले भी इसी के शिकार हैं। ऐसे में लेखक डॉ. विमलकीर्ति ने परम आदरणीय ज्योतिबा फुले की मराठी पुस्तक ‘गुलामगिरी’ हिन्दी में अनुवादित कर हम हिन्दी भाषी लोगों को लम्बे समय से खल रही एक कमी को दूर कर दिया है। मैंने भाषा की

शैली से पहचाना है कि उन्होंने 'ज्योतिबा' द्वारा कही गयी बातों को, तथ्यों को उनके मौलिक रूप में रखने की बहुत ही सावधानी बरती है। मैंने लेखक की ज्योतिबा लिखित अन्य पुस्तक 'सत्सार इशारा' भी देखी है और आप सबसे ज्योतिबा का यह साहित्य पढ़ने का अनुरोध करता हूँ।

अन्त में मैं बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में उन्नीसवीं सदी के महानतम् शूद्र ज्योतिबा के इस कथन से रुख्सत करता हूँ—

“हर मनुष्य को आजादी होनी चाहिए, यह उसकी बुनियादी जरूरत है। सभी को आजादी देकर उन्हें जुल्मी लोगों के जुल्म से मुक्त करके सुखी बनाना यही उनका इस तरह से खतरा मोल लेने का उद्देश्य है।”

नयी दिल्ली

10 अगस्त 1991

—शरद यादव  
केन्द्रीय मन्त्री (भारत सरकार)



# SLAVERY

(IN THE CIVILISED BRITISH GOVERNMENT  
UNDER THE CLOAK OF BRAHMANISM)

EXPOSED BY

JOTIRAO GOVINDRAW FULE

★ ★ ★

(ब्राह्मणी धर्माच्या आडपड्यांत)

गुलामगिरी

(सुधारल्या इंग्लिश राज्यांत)

हें लहानसे पुस्तक

जोतिराव गोविंदराव फुले

यांनी

लोक हितार्थ केले

ते

पुणे येथे “पुना सिटी प्रेस” छापखान्यांत छापले

किंमत १२ आणे

गरीब शूद्रादिअतिशूद्रांस ६ आणे

All Rights Reserved

(१८७३ में प्रकाशित हुये पहले मराठी संस्करण के मुख्यपृष्ठ का यथामूल मुद्रण)

DEDICATED  
TO  
THE GOOD PEOPLE OF THE  
UNITED STATES

AS A TOKEN OF ADMIRATION FOR THEIR SUBLIME  
DISINTERESTED AND SELF SACRIFICING DEVOTION in the cause  
of Negro Slavery; and with an earnest desire that my countrymen may take  
their noble example as their guide in the emancipation of their Sudra  
Brothern from the trammels of Brahmin thraldom.

THE AUTHOR

यूनैटेड स्टेट्स के सदाचारी लोगों ने  
गुलामों को दासता से मुक्त  
करने के कार्य में उदारता,  
निरपेक्षता और परोपकारबुद्धि  
दिखायी, इसलिए  
उनके सम्मान में  
यह छोटी-सी किताब

उन्हें परमस्तेहभाव से  
अर्पण कर रहा हूँ  
और मेरे देशवासी भाई  
उनके इस प्रसंशनीय कार्य का  
अनुकरण कर अपने  
शूद्र भाइयों को ब्राह्मण लोगों की  
गुलामी से मुक्त करने के कार्य में  
प्रेरणा लेंगे यही उम्मीद करता हूँ।

ग्रन्थकर्ता

# सूची

## प्रस्तावना

### परिच्छेद : एक

ब्रह्मा की व्युत्पत्ति, सरस्वती और इराणी या आर्य लोगों के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : दो

मत्स्य और शंखासुर के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : तीन

कच्छ, भूदेव या भूपति, क्षत्रिय, द्विज और कश्यप राजा के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : चार

वराह और हिरण्याक्ष के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : पाँच

नरसिंह, हिरण्यकश्यप, प्रह्लाद, विष्र, विरोचन, आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : छह

बलिराजा, ज्योतिबा, मराठा, खण्डोबा, महासुबा, नव खण्डों का न्यायी, भैरोबा, सात आश्रय, डेरा डालना, रविवार को पर्वत्र मानना, वामन, श्राद्ध करना, विन्ध्याकली, घट रखना, बलिराजा की मृत्यु, सति जाना, आराधी लोग, शिलंगण, भारत का बलिराजा बनाना, दसरे बलिराजा के आने का भविष्य, बाणासुर, कुजागरी, वामन की मृत्यु, उपाध्ये, होली, वीर पुरखों की भक्ति, बलि-प्रतिपदा, भाईदूज आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : सात

ब्रह्मा, ताड़ के पत्तों पर लिखने का रिवाज, जादू मन्त्र, संस्कृत का मूल, अटक नदी के उस पार जाने पर रोक, प्राचीन काल में ब्राह्मण लोगों द्वारा घोड़ी आदि जानवरों का मांस खाना, पुरोहित, राक्षस, यज्ञ, बाणासुर की मृत्यु, अद्यत (परवारी), धागे की गेंडली का निशान, मूलमन्त्र, महार, शूद्र, कुलकर्णी, कुनबी (कूर्मि), कुनबीन, शूद्रों से नफरत, अस्पर्शनीय भाव (सोवळे), धर्मशास्त्र, मनु, पुरोहित, पुरोहितों की पढ़ाई-लिखाई का परिणाम, प्रजापति की मृत्यु, ब्राह्मण आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : आठ

परशुराम, मातृहत्या, इक्कीस बार हमले, राक्षस, खण्डेराव ने रावण की मदद ली, नवखण्डों की जाणाई, सात देवियाँ (आसरा), महारों के गले का काला धागा, अतिशूद्र, अद्यत, मातंग, चण्डाल, महारों को पाँवोंतले रौंदना, ब्राह्मणों को गन्धर्व व्याह करने की मनाई, क्षत्रिय बच्चों की हत्या, प्रभु, रामोशी, जिनगर आदि लोग, परशुराम की हार हो जाने से उसने अपनी ही जान दे दी, और चिरंजीव परशुराम को निमन्त्रण आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : नौ

वेदमन्त्र, जादू का प्रभाव, अनछर पढ़कर मारना, भक्ति का दिखावा करना, जप, चार वेद, ब्रह्मजाल, नारदशाही, नया ग्रन्थ, शूद्रों को पढ़ाने-पढ़ने पर पाबन्दी, भागवत और मनुसंहिता में असमानता आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : दस

दूसरा बलिराजा, ब्राह्मण धर्म की दुर्दशा, शंकराचार्य करी बनावटी, नास्तिक मान्यता, निर्दयता, प्राकृत ग्रन्थ कर्ता? कर्म और ज्ञान मार्ग, बाजीराव पेशवा, मुसलिमों से नफरत, और अमरिकी तथा स्कॉच उपदेशकों ने ब्राह्मणों के कृत्रिम किले की दीवारें तोड़ दीं आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : एयरह

पुराण सुनाना, झगड़ाखोरी का परिणाम, शूद्र संस्थानिक, कुलकर्णी, सरस्वती की प्रार्थना, जप, अनुष्ठान, देव-स्थान, दक्षिणा, बड़े कुलनामों की सभाएँ, आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : बारह

इनामदार ब्राह्मण कुलकर्णी, यूरोपियन लोगों के उप-निवेशकों की आवश्यकता, शिक्षा विभाग के मुँह पर काला धब्बा, यूरोपियन कर्मचारियों का दिमाग कुण्ठाग्रस्त क्यों होता है, आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : तेरह

तहसीलदार, कलेक्टर, रेवेन्यू जज और इन्जिनियरिंग विभाग के ब्राह्मण कर्मचारी आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : चौदह

यूरोपियन कर्मचारियों का निष्क्रिय बनना, सामन्तों (ब्राह्मण खोत) का वर्चस्व, पेंशन लेकर सरकारी नौकरी से मुक्त हुए यूरोपियन कर्मचारियों ने सरकार के दरबार में गाँव-गाँव की हकीकत बताने की आवश्यकता, धर्म और जाति के अहंकार आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : पन्द्रह

सरकारी शिक्षा विभाग, म्यूनिसिपालिटी, दक्षिणा प्राइज कमिटी और ब्राह्मण अखबार वालों की एकता; और शूद्रों और अद्युतों के बड़ों ने लिखना-पढ़ना नहीं सीखना चाहिए इसलिए ब्राह्मणों द्वारा रचाये गये षड्यन्त्र आदि के सम्बन्ध में

### परिच्छेद : सोलह

ब्रह्मराखसों के उत्पीड़न-शोषण की क्षय

पैंवाड़ा

अभंग

### परिशिष्ट

महात्मा फुले पर लिखी गयी मौलिक किताबों की सूची

प्राक्कथन

## PREFACE

"The day that reduces a man to slavery takes from him the half of his virtue," **Homer**.

"Our system of Government in India is not calculated to raise the character of those subject to it, nor is the present system of education one to do more than *over-educate the few*, leaving the mass of the people as ignorant as ever and still mere at the mercy of the few learned; in fact, it is an extension of the demoralizing Brahmin-ridden policy, which perhaps, has more retarded the progress of civilization and improvement in India generally than anything else."

**Col. G.J. Haly—*On Fisheries in India***

"Many ages have elapsed since peculiar resources were afforded to the Brahmins; but the most considerate cosmopolite would hesitate to enroll them amongst the benefactors of the world. They boast of vast stores of ancient learning. They have amassed great riches, and been invested with unbounded power, but to what good end? They have cherished the most degrading superstitions and practised the most shameless impostures. They have arrogated to themselves the possession and enjoyment of the rarest gifts of fortune and perpetuated the most revolting system known to the world. It is only from a diminution of their abused power that we can hope to accomplish the great work of national regeneration."

**Mead's *Se poy Revolt*.**

Recent researches have demonstrated beyond a shadow of doubt that the Brahmins were not the aborigines of India—At some remote period of antiquity, probably more than 3000 years ago, the Aryan progenitors of the present Brahmin Race descended upon the plains of Hindooostan from regions lying beyond the Indus, the Hindoo Koosh and other adjoining tracts. According to Dr. Pritchard, the Ethnologist they were an off-shoot of the Great Indo-European race, from whom the Persians, Medes, and other Iranian nations in Asia and the principal nations in Europe like-wise are descended. The Affinity existing between the Zend, the Persian and Sanskrit languages, as also between all the European languages,

unmistakably points to a common source of origin. It appears also more than probable that the original cradle of this race being an arid, sandy and mountainous region, and one ill calculated to afford them the sustenance which their growing wants required, they branched off into colonies, East and West. the extreme fertility of the soil in India, Its rich productions, the proverbial wealth of its people, and the other innumerable gifts which this favoured land enjoys, and which have more recently tempted the cupidity of the Western nations, no doubt, attracted the Aryans, who came to India not as simple emigrants with peaceful intentions of colonization, but as conquerors. They appear to have been a race imbued with very high notions of self, extremely cunning arrogant and bigoted. Such self-gratulatory, pride-flattering epithets as आर्य, भूदेव etc, with which they designated themselves, confirm us in our opinion of their primitive character, which they have preserved up to the present time, with perhaps, little change for the better. The aborigines whom the Aryans subjugated, or displaced, appear to have been a hardy and brave people from the determined front which they offered to these interlopers. Such opprobrious terms as (शूद्र) Sudra 'insignificant' महारी 'the great foe' अन्त्यज, चाडांळ etc. with which they designated them, undoubtedly show that originally they offered the greatest resistance in their power to their establishing themselves in the country, and hence the great aversion and hatred in which they are held. From many customs\* traditionally handed down to us as well as from the mythological legends contained in the sacred dooks of the Brahmins, it is evident that there had been a hard struggle for ascendancy between the two races. The wars of Dev and Daitya, or the Rakshas, about which so many fictions are found scattered over the sacred books of the Brahmins, have certainly a reference to this primeval struggle. The original inhabitants with whom these earthborn Gods, the Brahmins, fought, were not inappropriately termed Rakshas, that is the protectors of the land. The incredible and foolish legends regarding their form and shape are no doubt mere chimeras, the fact being that these people were of superior stature and hardy make. Under such leaders as Brahma, Parshuram and others the Brahmins waged very protected wars against the original inhabitants. They eventually succeeded in establishing their supremacy and subjugating the aborigines to their entire control. Accounts of these conquests, enveloped with a mass of incredible fiction, are found in the books of the Brahmins. In some instances they were compelled to emigrate, and in others wholesale extermination was resorted to. The cruelties which the European settlers practised on the American Indians on their first settlement in the new world, had certainly their

parallel in India on the advent of the Aryans and their subjugation of the aborigines. The cruelties and inhuman atrocities which Parshuram committed on the Kshetrias, the people of this land, if we are to believe even one tenth of what the legends say regarding him, surpass our belief and show that he was more a fiend than a God. Perhaps in the whole range of history it is scarcely possible to meet with such another character as that of Parshuram, so selfish, infamous, cruel and inhuman. The deeds of Nero, Alaric or Machiavelli sink in to insignificance before the ferocity of Parshuram. The myriads of men and defenceless children whom he butchered simply with a view to the establishment of his coreligionists on a secure and permanent basis in this land, is a fact for which generations ought to execrate his name, rather than deify it.

This, in short, is the history of Brahmin domination in India. They originally settled on the banks of the Ganges whence they gradually spread over the whole of India. In order, however, to keep a better hold on the people they devised that weird system of mythology, the ordination of caste, and the code of cruel and inhuman laws, to which we can find no parallel amongst other nations. They founded system of priesthood so galling in its tendency and operation, the like of which we can hardly find anywhere since the times of the Druids. The institution of Caste, which has been the main object of their laws, had no existence among them originally. That it was an after creation of their deep cunning is evident from their own writings. The highest rights, the highest privileges and gifts, and everything that would make the life of a Brahmin easy, smoothgoing and happy everthing that would conserve or flatter their self-pride,-were specially inculcated and enjoined, whereas the Sudras and Atisudras were regarded with supreme hatred and contempt, and the commonest rights of humanity were denied them. Their touch, nay, even their shadow, is deemed a pollution. They are considered as mere chattels, and their life of no more value than that of meanest reptile; for it is enjoined that if a Brahmin, 'kill a cat or an ichneumon, the bird chasha, or a frog or a dog, a lizard, an owl, a crow or a Sudra" he is absolved of his sin by performing the चांद्रायण प्रायश्चित्त, a fasting penance, perhaps for a few hours or a day and requiring not much labour or trouble. While for a Sudra to kill a Brahmin is considered the most heinous offence he could commit, and the forfeiture of his life is the only punishment his crime is considered to merit. Happily for our Sudra brethren of the present day our enlightened British Rulers have not recognized these preposterous, inhuman and unjust penal enactments of the Brahmin legislators. They no doubt regard them more as ridiculous fooleries than as equitable laws.

Indeed, no man possessing even a grain of common sense would regard them as otherwise. Any one, who feels disposed to look a little more into the laws and ordinances as embodied in the *Manava Dharma Shastra* and other works of the same class, would undoubtedly be impressed with the deep cunning underlying them all. It may not, perhaps, be out of place to cite here a few more instances in which the superiority or excellence of the Brahmins is held and enjoined on pain of Divine displeasure.

The Brahmin is styled the Lord of the Universe, even equal to the God himself. He is to be worshipped, served and respected by all.

A Brahmin can do no wrong.

Never shall the King slay a Brahmin, though he has committed all possible crimes.

To save the life of a Brahmin any falsehood may be told. There is no sin in it.

No one is to take away anything belonging to a Brahmin.

A king, though dying with want, must not receive any tax from a Brahmin, nor suffer him to be afflicted with hunger or the whole kingdom will be afflicted with famine.

The feet of a Brahmin are holy. In his left foot reside all the तीर्थ (holy pilgrimages) and by dipping which into water the makes it as holy as the waters at the holiest of shrines.

A Brahmin may compel a man of the servile class to perform servile duty, because such a man was created by the almighty only for the purpose of serving Brahmins.

A Sudra, thought emancipated by his master, is not released from state of servitude; for, being born in a state which is natural to him by whom can he be divested of his natural attributes?

Let a Brahmin not give temporal advice nor spiritual conseil to a Sudra.

No superfluous accumulation of wealth shall be made by a Sudra, even though he has the power to make it, since a servile man who has amassed riches becomes proud and by his insolence or neglect he gives pain even to Brahmins.

If a Sudra cohabit with a Brahminee adulteress, his life is to be taken. But if a Brahmin goes even unto the lawful wife of a Sudra he is exempted from all corporal punishment.

It would be needless to go on multiplying instances such as these. Hundreds of similar ordinances including many more of a worse character than these can be found scattered over their books. But what can have been the motives and objects of such cruel and inhuman Laws? They are, I

believe, apparent to all but to the infatuated, the blind and the self-interested. Anyone who runs may even read them. Their main object in fabricating these falsehoods was to dupe the minds of the ignorant and to rivet firmly on them the chains of perpetual bondage and slavery which their selfishness and cunning had forged. The severity of laws as affecting the shudras, and the intense hatred with which they were regarded by the Brahmins can be explained on no other supposition but that there was, originally between the two, a deadly feud, arising as we have shown above, from the advent of the latter into this land. It is surprising to think what a mass of specious fiction the interlopers invented with a view to hold the original occupiers of the soil fast in their clutches, and rule securely for ages yet to come through the means of their credulity. Anyone who will consider well the whole history of Brahmin domination in India, and the thralldomunder which it has retained the people even up to the present day, will agree with us in thinking that no language could be too harsh by which to characterise the selfish heartlessness and the consummats cunning of the Brahmin tyranny by which India has been so long governed. How far the Brahmins have succeed in their endeavours to enslave the minds of the Sudras and Atisudras, those of them who have come to know the true state of matters know well to their cost. For generations past they have born these chains of slavery and bondage. Innumerable Bhut writers, with the selfsame objects as those of Menu and others of his class, added from time to time to the existing mass of legends, the idle phantasies of their own brains, and palmed them off upon the ignorants masses as of Divine inspiration, or as the acts of the Deity himself. The most immoral, inhuman, unjnst actions and deeds have been attributed to that Being who is our Creator, Governor and Protector and who is all Holiness himself.

These blasphemous writings, the products of the distempered brains of these interlopers, were received as gospel truths, for to doubt them was considered as the most unpardonable of sins. This system of slavery, to which the Brahmins reduced the lower classes is in no respects inferior to that which obtained a few years ago in America. In the days of rigid Brahmin dominancy, so lately as that of the time of the Peshwa, my Sudra brethren had even greater hardships and oppression practised upon them than what even the slaves in America had to suffer. To this system of selfish superstition and bigotry, we are to attribute the stagnation and all the evils under which India has been groaning for many centuries past. It will, indeed, be difficult to name a single advantage which accrued to the aborigines from the advent of this intensely selfish and tyrannical sect. The

Indian Ryot (the Sudra and Atisudra) has been in fact a proverbial Milch cow. He has passed from hand to hand. Those who successively held sway over him cared only to fatten themselves on the sweat of his brow, without caring for his welfare or condition. It was sufficient for their purposes that they held him safe in their clutches for squeezing out of him as much as they possibly could. The Brahmin had as last so contrived to entwine himself round the Sudra in every large or small undertaking, in every domestic or public business that the latter is by custom quite unable to transact any concern of moment without his aid.

This is even true at the present time. While the Sudra on the other hand is so far reconciled to the Brahmin yoke, that like the American slave he would resist any attempt that may be made for his deliverance and fight even against his benefactor. Under the guise of religion the Brahmin has his finger in every thing, big or small, which the Sudra undertakes. Go to his house, to his field or to the court to which business may invite him, the Brahmin is there under some specious pretext or other, trying to squeeze out of him as much as his cunning and wily brain can manage.

The Brahmin despoils the Sudra not only in his capacity of a priest, but does so in a variety of other ways Having by his superior education and cunning monopolized all the higher places of emolument, the ingenuity of his ways is past finding out, as the reader will find on an attentive persual of this book. In the most insignificant village as in the largest town, the Brahmin is the all in all; the be all and the end all of the Ryot. He is the master the ruler. The Patel of a village, the headman is in fact a nonentity. The Koolkurnee the hereditary Brahmin village accountant, the notorious quarrel-monger, moulds the Patell accord in to his. He wishes is the temporal and spiritual adviser of the ryots, the Soucar in his necessities and the general referee in all matters. In most instances he plans active mischief by advising opposite parties differently, so that he may feather his own nest well. If we go up higher, to the Court of a Mamlutdar, we find the same thing. The first anxiety of a Mamlutdar is to get round him, if not his own relatives, his castemen to fill the various offices under him. Therse actively foment quarrels and are the media of all corrupt practices prevailing generally round about these Courts.

If a Sudra or Atisudra repairs to his Courts the treatment which he receives is akin to what the meanest reptile gets. Instead of his case receiving a patient and carefull hearing, a choice lot of abuse is showered on his devoted head, and his prayer is set aside on some pretext or other. Whereas if one of his own castemen were to repait to the Court on the self-same business, he is received with all courtesy, and their is hardly any time

lost in getting the matter right. If we go up still higher to the Collector's and Revenue Commissioner's courts and to the other Departments of the Public Service, the Engineer, Educational etc., the same system is carried out on a smaller or greater scale.

The higher European officers generally view men and things through Brahmin spectacles, and hence the deplorable ignorance they often exhibit in forming a correct estimate of them. I have tried to place before my readers in the concluding portions of this book what expedients are employed by these Brahmin officials for fleecing the Coonbee in the various departments to which business or his necessities induce him to resort. Any one knowing intimately the workings of the different departments and the secret springs which are in motion, will unhesitatingly concur with me in saying that what, I have described in the following pages is not one hundredth part of the rogueries that are generally practised on my poor, illiterate and ignorant Sudra brethren. Though the Brahmin of the old Peishwa school is not quite the same as the Brahmin of the present day, though the march of Western ideas and civilization is undoubtedly telling on his superstition and bigotry, he has not as yet abandoned his time cherished notions of superiority of the dishonesty of his ways. The Beef, the Mutton, the intoxicating beverages stronger and more fiery than the famed *some juice*, which their ancestors once relished, as the veriest dainties, are fast finding innumerable votaries among them.

The Brahmin of the present time finds to some extent, like Othello, that his occupation is gone. but knowing full well this state of matters, is the Brahmin inclined to make atonement for his past selfishness? Perhaps, it would have been useless to repine over what has been suffered and what has passed away, had the present state been all that is desirable. We know perfectly well that the Brahmin will not descend from his self-raised high pedestal and meet his Conbee and low caste brethren on an equal footing without a struggle. Even the educated Brahmin who knows his exact position and how he has come by it, will not condescend to acknowledge the errors of his forefathers and willingly forego the long cherished false notions of his own superiority. At present, not one has had the moral courage to do what only duty demands and as long as this state of matters continues, rect distrust and degrading sect, the condition of the Sudras will remain unaltered and India will never advance in greatness or prosperity.

Perhaps a part of the blame in bringing matters to this crisis may be justly laid to the credit of the Government. Whatever may have been their motives in providing ampler funds and greater facilities for higher

education and neglecting that of the masses. It will be acknowledged by all that in justice to the latter this is not as it should be. It is an admitted fact that the greater portion of the revenues of the Indian Empire are derived from the Ryot's labor-from the sweat of his brow. The higher and richer classes contribute little or nothing to the state's exchequer. A well informed English writer states that—

"Our income is derived, not from surplus profits, but from capital; not from luxuries but from the poorest necessaries. It is the product of sin and tears."

That Government should expend profusely a large portion of revenue thus raised, on the education of the higher classes, for it is these only who take advantage of it, is anything but just or equitable. Their object in patronising this virtual high class education appears to be to prepare scholars. "Who, it is thought, would in time vend learning without money and without price." "If we can inspire," say they "the love of knowledge in the minds of the superior classes, the result will be a higher standard of morals in the cases of the individuals, a large amount of affection for the British government, and an unconquerable desire to spread among their own countrymen the intellectual blessings which they have received."

Regarding these objects of Government the writer, above alluded to, states that—

"We have never heard of philosophy more benevolent and more utopian. It is proposed by men who witness the wonderous changes brought about in the Western world, purely by the agency of popular knowledge, to redress the defects of the two hundred millions of India, by giving superior education to the superior classes and to them only."

\*\*\*"We ask the friends of Indian Universities to favour us with a single example of the truth of their theory from the instances which have already fallen within the scope of their experience. They have educated many children of wealthy men, and have been the means of advancing very materially the wordly prospects of some of their pupils; but what contribution have these made to the great work of regenerating their fellowmen? How have they begun to act upon the masses? Have any of them formed classes at their own homes or elsewhere, for the instruction of their less fortunate or less wise countrymen? Or have they kept their knowledge to themselves, as a personal gift, not to be soiled by contact with the ignorant vulgar? Have they in any way shown themselves anxious to advance the general interests and repay philanthropy with patriotism? Upon what grounds is it asserted that the best way to advance the moral and intellectual welfare of the people is to raise the standard of instruction

among the higher classes? A glorious argument this for aristocracy were it only tenable. To show the growth of the national happiness, it would only be necessary to refer to the number of pupils at the colleges and the lists of the academic degree. Each wrangler would be accounted a national benefactor; and the existence of Deans and Proctors would be associated, like the game laws and the ten-pound franchise, with the best interests of the Constitution."

Perhaps the most glaring tendency of the Government system of high class education has been the virtual monopoly of all the higher offices under them by the Brahmins. If the welfare of the Ryot is at heart, if it is the duty of government to check a host of abuse, it behoves them to narrow this monopoly, day by day, so as to allow a sprinkling of the other castes to get in to the public service. Perhaps some might be inclined to say that it is not feasible in the present state of education. Our only reply is that if government look a little less after higher education and more towards the education of the masses, the former being able to take care of itself, there would be no difficulty in training up a body of men every way qualified and perhaps far better in morals and manners.

My object in writing the present volume is not only to tell my Sudra brethren how they have been duped by the Brahmins, but also to open the eyes of Government to that pernicious system of high class education which has hitherto been so persistently followed and which statesmen like Sir George Campbell, the present Lieutenant Governor of Bengal, with broad and universal sympathies, are found to be highly mischievous and pernicious to the interests of Government. I sincerely hope that Government will ere long see the error of their ways, trust less to writers or men who look through high class spectacles and take the glory in to their own hands of emancipating my Sudra brethren from the trammels of bondage which the Brahmins have woven round them like the coils of a serpent. It is no less the duty of such of my Sudra brethren as have received any education to place before government the true state of their fellowmen and endeavour to the best of their power to emancipate themselves from Brahmin thralldom. Let there be schools for the Sudras in every village; but away with all Brahmin school-masters! The Sudras are the life and sinews of the country, and it is to them alone and not to the Brahmins that the Government must ever look to tide them over their difficulties, financial as well as political. If the hearts and minds of the Sudras are made happy and contented the British Government need have no fear for their loyalty in the future.

—Joteerao Phooley

---

\* — A most remarkable and striking corroboration of these views is to be found in the religious rites observed on some of the grand festivals which have a reference to Bali Raja, the great king who appears to have regined once in the hearts and affections of the Sudras and whom the Brahmin rulers displaced. On the day of *Dushara*, the wife and sisters of a Sudra, when he returns from his worship of the *Shumi Tree* and after the distribution of its leaves, which are regarded on that day as equivalent to gold, amongst his friends, relations and acquaintances, he is greeted, at home with a welcome 'अला बला और जावे और बली का राज आवे' "Let all troubles and misery go, and the kingdom of Bali come." Whereas the wife and sisters of a Brahmin place on that day in the froeground of the house an image of Bali, made generally of wheaten or other flour, and when the Brahmin returns from his worship of the *Shumi Tree* he takes the stalk of it, pokes with it the belly of the image and then passes into the house. This contrariety, in the religious customs and usages obtaining amongst the Sudras and the Brahmins and of which many more examples might be adduced can be explained on no other supposition but that which I have tried to confirm and elucidate in these pages.

## प्रस्तावना

सैकड़ों साल से आज तक शूद्रादि अतिशूद्र (अद्धूत) समाज, जब से इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता कायम हुई तब से लगातार जुल्म और शोषण का शिकार हैं। ये लोग हर तरह की यातनाएँ और कठिनाइयों में अपने दिन गुजार रहे हैं। इसलिए इन लोगों को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए और गम्भीरता से सोचना चाहिए। अब इसके आगे ये लोग अपने आप को ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों की जुल्म-ज्यादतियों से कैसे मुक्त कर सकते हैं, यही आज हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सवाल है, यही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। यह कहा जाता है कि इस देश में ब्राह्मण पुरोहितों की सत्ता कायम हुए लगभग तीन हजार साल से भी ज्यादा समय बीत गया होगा। वे लोग परदेश से यहाँ आये। उन्होंने इस देश के मूल निवासियों पर बर्बर हमले करके इन लोगों को अपने घरबार से, जमीन-जायदाद से भगा दिया और इन सभी को अपने गुलाम (दास, दस्यु) बनाये। और उन्होंने इनके साथ बड़ी अमानवीयता का रखैया अपनाया था। आगे सैकड़ों साल बीत जाने के बाद इन लोगों को बीते काल की घटनाओं की विस्मृतियाँ हुई देखकर कि हम परदेश से आकर यहाँ के मूल निवासियों को घरबार जमीन-जायदाद से खदेड़कर इन्हें अपना गुलाम बनाकर रखा, इस बात के प्रमाणों को ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों ने तहस-नहस कर दिया, दफनाकर नष्ट कर दिया।

उन ब्राह्मणों ने अपना प्रभाव, अपना वर्चस्व इन लोगों के दिलों-दिमाग पर बनाये रखा जिससे केवल अपना स्वार्थ फलता-फूलता रहे, इसलिए उन्होंने कई तरह के हथकण्डे अपनाये और वे सभी इसमें कामयाब भी होते रहे चूँकि उस समय ये लोग सत्ता की दृष्टि से पहले ही पराधीन हुए ही थे और बाद में ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों ने उन्हें ज्ञानहीन-बुद्धिहीन बना दिया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि, ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों के दाँव-पेंच, उनकी जालसाजी इनमें से किसी के भी ध्यान में नहीं आ सकी। ब्राह्मण-पुरोहितों ने इन पर अपना वर्चस्व कायम करके इन्हें हमेशा-हमेशा के लिए अपना गुलाम बनाकर रखने के लिए केवल अपने निजी हितों को ही मद्देनजर रखकर एक से अधिक बनावटी ग्रन्थों की रचना करके कामयाबी हासिल की। उन नकली ग्रन्थों में उन्होंने यह दिखाने की पूरी कोशिश की कि, हमें जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं वे सब हमें ईश्वर द्वारा प्राप्त हैं। इस तरह का झूठा प्रचार उस समय के अनपढ़ लोगों में किया गया और उस समय के शूद्रादि-अतिशूद्रों में मानसिक गुलामी के बीज बोये गये। उन ग्रन्थों में यह भी लिखा गया कि शूद्रों को (ब्रह्मा ने) पैदा करने का उद्देश्य बस इतना ही था कि इनको हमेशा-हमेशा के लिए ब्राह्मण-पुरोहितों की सेवा करने में ही लगा रहना चाहिए और ब्राह्मण-पुरोहितों की मर्जी के खिलाफ कुछ भी नहीं करना चाहिए। मतलब ये ईश्वर को प्राप्त होंगे और इनका जीवन सार्थक होगा।

लेकिन इन ग्रन्थों के बारे में किसी ने कुछ भी सोचा होता कि यह बात कहाँ तक सही है? क्या वे सचमुच ईश्वर द्वारा प्राप्त हैं? तो उन्हें इसकी सच्चाई तुरन्त समझ में आ जाती। लेकिन इस प्रकार के ग्रन्थों से सर्वशक्तिमान, सृष्टि का निर्माता जो परमेश्वर है

उसकी समानतावादी दृष्टि को बड़ा गौणत्व प्राप्त हो गया है। इस तरह के हमारे जो ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहित वर्ग के भाई हैं, जिन्हें भाई कहने में भी शर्म आती है, क्योंकि उन्होंने किसी समय शूद्रादि-अतिशूद्रों को पूरी तरह से तबाह कर दिया था और वे ही लोग अभी धर्म के नाम पर, धर्म की मदद से इनको चूस रहे हैं। एक भाई द्वारा दूसरे भाई पर जुल्म करना यह भाई का धर्म नहीं है। फिर भी हमें हम सभी के उत्पन्नकर्ता के रिश्ते से उन्हें भाई कहना पड़ रहा है। तो वे भी खुले रूप से यह कहना छोड़ेंगे नहीं, फिर भी उन्होंने केवल अपने स्वार्थ का ही ध्यान न रखते हुए सिर्फ न्यायबुद्धि से ही सोचना चाहिए। यदि ऐसा ही है, तो उन ग्रन्थों को देखकर-पढ़कर हमारे बुद्धिमान अंग्रेज, फ्रेन्च, जर्मन, अमेरिकी और अन्य बुद्धिमान लोग अपना यह मत दिये बिना नहीं रहेंगे कि उन ग्रन्थों को (ब्राह्मणों ने) केवल अपने मतलब के लिए लिख रखा है। उन ग्रन्थों में हर तरह से ब्राह्मण-पुरोहितों का महत्व बताया गया है। ब्राह्मण-पुरोहितों का शूद्रादि-अतिशूद्रों के दिलो-दिमाग पर हमेशा-हमेशा वर्चस्व बना रहे इसलिए उन्हें ईश्वर से भी श्रृंगार समझा गया है। ऊपर जिनका नाम निर्देश किया गया है, उनमें अंग्रेज लोगों ने इतिहासादि ग्रन्थों में कई जगह यह लिख रखा है कि, ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों ने अपने निजी स्वार्थ के लिए अन्य लोगों को मतलब शूद्रादि-अतिशूद्रों को अपना गुलाम बना लिया है। उन ग्रन्थों द्वारा ब्राह्मण-पुरोहितों ने ईश्वर के वैभव को कितनी नीच अवस्था तक ला रखा है, यह सही में बड़ा शोचनीय सवाल है। जिस ईश्वर ने शूद्रादि-अतिशूद्रों को और अन्य लोगों को अपने द्वारा निर्मित इस सृष्टि की सभी वस्तुओं को समान रूप से उपभोग लेने की पूरी आजादी दी है, उस ईश्वर के नाम पर ब्राह्मण-पुरोहितों ने एकदम झूठ-मूठ ग्रन्थों की रचना करके उन सभी ग्रन्थों में सभी के (मानवी) हक को नकारते हुए स्वयं मालिक हो गये।

इस बात पर हमारे कुछ ब्राह्मण भाई इस तरह का सन्देह उठा सकते हैं कि यदि ये तमाम ग्रन्थ झूठ-मूठ के हैं, तो उन ग्रन्थों पर शूद्रादि-अतिशूद्रों के पूर्वजों ने क्यों आस्था रखी थी? और आज भी इनमें से बहुत सारे लोग क्यों आस्था रखे हुए हैं? इसका जवाब यह है कि, आज के इस प्रगत काल में कोई किसी पर जुल्म नहीं कर सकता, मतलब अपनी बात को लाद नहीं सकता। आज सभी को अपने मन की बात, अपने अनुभव की बात स्पष्ट रूप से लिखने की या बोलने की इजाजत है। किसी बुजुर्ग आदमी की ओर से कोई धृत आदमी किसी बड़े व्यक्ति के नाम से झूठा पत्र भी लिखकर लाया फिर भी कुछ समय के लिए ही क्यों न हो उस पर भरोसा करना ही पड़ता है। बाद में समय के अनुसार वह भी झूठ साबित हो ही जाता है। यदि यही है तो शूद्रादि-अतिशूद्र किसी समय ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों के जुल्म और ज्यादतियों के शिकार होने की वजह से और इन्हें उन्होंने पूरी तरह से अनपढ़-गँवार बनाकर रखने की वजह से उनका पतन हुआ है। ब्राह्मणों ने अपने (जाति) स्वार्थ के लिए समर्थ (रामदास)\* के नाम पर झूठे-पाखण्डी ग्रन्थों की रचना करके शूद्रादि-अतिशूद्रों को गुमराह किया और आज भी इनमें से कई लोगों को ब्राह्मण-पुरोहित लोग गुमराह कर रहे हैं, यह स्पष्ट रूप से उक्त कथन की पुष्टि करता है।

ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहित लोग अपना पेट पालने के लिए अपने पाखण्डी ग्रन्थों द्वारा जगह-जगह बार-बार अज्ञानी शूद्रों को उपदेश देते रहे, जिसकी वजह से इनके दिलो-दिमाग में ब्राह्मणों के प्रति पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती रही। इन लोगों को उन्होंने (ब्राह्मणों ने) इनके मन में ईश्वर के प्रति जो भावना है वही भावना अपने को (ब्राह्मणों को)

समर्पित करने के लिए मजबूर किया। यह कोई साधारण या मामूली अन्याय नहीं है। इसके लिए उन्हें ईश्वर के पास जवाब देना होगा। ब्राह्मणों के उपदेशों का प्रभाव अधिकांश अज्ञानी शूद्र लोगों के दिलो-दिमाग पर इस तरह से पकड़ जमाये हुए हैं कि, ये अमरीका के (काले) गुलामों की तरह जिन दुष्ट लोगों ने हमें गुलाम बनाकर रखा है उनसे लड़कर मुक्त (आजाद) होने की बजाय जो हमें आजादी दे रहे हैं उन लोगों के विरुद्ध बेफिजूल कमर कसकर लड़ने के लिए तैयार हुए हैं। यह भी एक बड़े आश्वर्य की बात है कि, हम लोगों पर जो भी कोई उपकार करते होंगे, उनको कहना कि हम पर उपकार मत करो, फिलहाल हम जिस स्थिति में हैं वही स्थिति ठीक है, यह कहकर हम शान्त नहीं होते बल्कि उनसे झगड़ने के लिए तैयार रहते हैं, यह गलत है। वास्तव में हमको गुलामी से मुक्त करने वाले जो लोग हैं, उनका हमको आजाद कराने से कुछ हित होता है, ऐसा भी नहीं है। बल्कि उनको अपने ही लोगों में से सैकड़ों लोगों की बलि चढ़ानी पड़ती है। उन्हें बड़े-बड़े जोखिम उठाकर अपनी जान पर भी खतरा झेलना पड़ता है।

अब उनका इस तरह से दूसरों के हितों का रक्षण करने के लिए अगुवायी करने का उद्देश्य क्या होना चाहिए? यदि इस सम्बन्ध में हमने गहराई से सोचा तो हमारी समझ में आयेगा कि, हर मनुष्य को आजाद होना चाहिए, यही उसकी बुनियादी जरूरत है। जब व्यक्ति आजाद होता है तब उसे अपने मन के भावों और विचारों को स्पष्ट रूप से दूसरों के सामने प्रगट करने का मौका मिलता है। लेकिन जब उसे आजादी नहीं होती तब वह वही महत्त्वपूर्ण विचार, जनहित के होने के बावजूद दूसरों के सामने प्रगट नहीं कर सकता। और समय गुजर जाने के बाद वे सभी विचार लुप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार मनुष्य आजाद होने से वह अपने सभी मानवीय अधिकार प्राप्त कर लेता है और असीम आनन्द का अनुभव करता है। सभी मनुष्यों को मनुष्य होने के जो सामान्य अधिकार, इस सृष्टि के नियंत्रक और सर्वसाक्षी परमेश्वर द्वारा दिये गये हैं उन तमाम मानव अधिकारों को ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहित वर्ग ने दबाकर रखा है। अब ऐसे लोगों से अपने मानवीय अधिकर छीनकर लेने में कोई कसर बाकी नहीं रखनी चाहिए। उनके हक उन्हें मिल जाने से उन अंग्रेजों को खुशी होती है। सभी को आजादी देकर उन्हें जुल्मी लोगों के जुल्म से मुक्त करके सुखी बनाना ही उनका इस तरह से खतरा मोल लेने का उद्देश्य है। वाहवा!! यह कितना बड़ा जनहित का कार्य है!

उनका इतना अच्छा उद्देश्य होने की वजह से ईश्वर उन्हें, वे जहाँ गये वहाँ ज्यादा से ज्यादा कामयाबी देता रहा है। और अब इसके आगे भी इस तरह के अच्छे कामों में उनके प्रयास सफल होते रहें, उन्हें कामयाबी मिलती रहे, हम भगवान से यही प्रार्थना करते हैं।

दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका जैसे पृथ्वी के इन दो बड़े हिस्सों में सैकड़ों साल से अन्य देशों से लोगों को पकड़-पकड़ कर यहाँ उन्हें गुलाम बनाया जाता था। यह दासों को खरीदने-बेचने की प्रथा यूरोप के और तमाम प्रगत कहलाने वाले राष्ट्रों के लिए बड़ी लज्जा की बात थी। उस कलंक को दूर करने के लिए अंग्रेज, अमेरिकी आदि उदार लोगों ने बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ लड़कर अपने नुकसान की बात को दर-किनार कर, उन्होंने अपने जान की भी परवाह नहीं की और गुलामों की मुक्ति के लिए लड़ते रहे। यह गुलामी प्रथा कई सालों से चली आ रही थी। इस अमानवीय गुलामी प्रथा को समल नष्ट करने कर देने के लिए और असंख्य गुलामों को उनके परम-प्रिय माताओं-पिताओं से, भाई-बहनों

से, बीवी-बच्चों से, दोस्त-मित्रों से जुदा कर देने की वजह से जो यातनायें सहनी पड़ीं उससे उन्हें मुक्त करने के लिए उन्होंने संघर्ष किया। उन्होंने जो गुलाम एक-दूसरे से जुदा कर दिये गये थे, उन्हें एक-दूसरे के साथ मिला दिया। वाह! अमरीकी आदि सदाचारी लोगों ने कितना अच्छा काम किया है। यदि आज उन्हें उन गरीब अनाथ गुलामों की बदतर स्थिति देखकर दया न आयी होती तो वे गरीब बेचारे अपने प्रियजनों से मिलने की इच्छा मन में ही रखकर मर गये होते।

दूसरी बात, उन गुलामों को पकड़कर लाने वाले दुष्ट लोग उन्हें क्या अच्छी तरह रखते भी थे या नहीं? नहीं, उन गुलामों पर वे लोग जिस प्रकार से जुल्म करते थे, उन जुल्मों की कहानी सुनते ही पथरदिल आदमी भी रोने लगेगा। वे लोग उन गुलामों को जानवर समझकर उनसे हमेशा लात-जूतों से काम लेते थे। वे लोग कभी-कभी चिलचिलाती धूप में हल जुतवाकर उनसे अपनी जमीन जोत बोलते थे। और यदि उन्होंने कुछ थोड़ी-सी आनाकानी भी की तो उनके बदन पर बैलों की तरह साँटे से घाव उतार देते थे। इतना होने पर भी क्या वे उनके खानपान की अच्छी व्यवस्था करते होंगे? इस बारे में तो कहना ही क्या? उन्हें केवल एक समय का खाना मिलता था। दूसरे समय कुछ भी नहीं। उन्हें जो भी खाना मिलता था वह भी बहुत थोड़ा-सा जिसकी वजह से उन्हें हमेशा आधे भूखे पेट रहना पड़ता था। लेकिन उनसे छाती चूर-चूर होकर मुँह से खून फेंकने तक दिन भर काम करवाया जाता था। और रात को उन्हें जानवरों के कोठे में या इस तरह की गन्दी जगहों में सोने के लिए छोड़ दिया जाता था, जहाँ थक कर आने के बाद वे गरीब बेचारे उन पथरीली जमीन पर मुर्दों की तरह सो जाते थे। फिर आँखों में पर्याप्त नींद कहाँ से होगी? बेचारों को आखिर नींद आयेगी भी कहाँ से? इससे पहली बात तो यह थी कि, पता नहीं मालिक को किस समय उनकी गरज पड़ जाये और उनका बुलावा आ जाये, इस बात का उनको जबरदस्त डर लगा रहता था। दूसरी बात यह थी कि पेट में पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं होने की वजह से जी घबराता था और जान लड़खड़ाने लगती थी। तीसरी बात यह थी कि, दिन भर बदन पर साँटे के वार बरसते रहने से सारा बदन लहूलुहान हो जाता था और उसकी यातनाएँ इतनी जबरदस्त होती थीं कि पानी में मछली की तरह रात भर तड़फ़ड़ाते हुए इस करवट से उस करवट पर होना पड़ता था। चौथी बात यह थी कि, अपने लोग अपने पास न होने की वजह से उस बात का दर्द तो और भी भयंकर था। इस तरह की बातें मन में आने से यातनाओं के ढेर खड़े हो जाते थे और आँखें रोने लगती थीं। वे बेचारे भगवान से दुआ माँगते थे कि, ‘हे भगवान! अब तो हम पर कुछ दया कर। तू हम पर रहम कर। अब हम इन यातनाओं को बर्दाश्त करने के भी काबिल नहीं रहे हैं। अब हमारी जान भी निकल जाये तो अच्छा ही होगा।’ इस तरह की यातनाएँ सहते-सहते, इस तरह से सोचते-सोचते ही सारी रात गुजर जाती थी। उन लोगों को जिस-जिस प्रकार की पीड़ाओं को, यातनाओं को सहना पड़ा उनको यदि एक-एक करके कहा जाये तो भाषा और साहित्य के शब्द भी फीके पड़ जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। तात्पर्य, अमेरिकी लोगों ने आज सैकड़ों साल से चली आ रही गुलामी की अमानवीय परम्परा को समाप्त करके गरीब अनाथ लोगों को उन चण्ड लोगों के जुल्म से मुक्त करके उन्हें पूरी तरह से सुख की जिन्दगी बख्शी है। इन बातों की शूद्रादि-अतिशूद्राओं को अन्य लोगों की तुलना में बहुत ही ज्यादा खुशी होगी। क्योंकि, गुलामी की अवस्था में गुलाम लोगों को, गुलाम जातियों को मिली यातनाएँ बर्दाश्त करनी पड़ती हैं, इसका स्वयं अनुभव किये बिना अन्दाजा करना

नामुमकिन है। जो सहता है वही जानता है।

अब उन गुलामों में और इन गुलामों में फर्क इतना ही होगा कि पहले प्रकार के गुलामों को ब्राह्मण-पुरोहितों ने अपने बर्बाद हमलों से पराजित कर के गुलाम बनाया था और दूसरे प्रकार के गुलामों को दुष्ट लोगों ने एकाएक जुल्म करके गुलाम बनाया था। शेष बातों में इनकी और स्थिति समान हैं। इनकी स्थिति में और उन गुलामों की स्थिति में बहुत फर्क नहीं है। उन्होंने जिस-जिस प्रकार की मुसीबतों को बर्दाश्त किया है वह सभी मुसीबतें शूद्रादि-अतिशूद्रों ने ब्राह्मण-पण्डि-पुरोहितों से सही हैं। यदि यह कहा जाये कि, उन लोगों से भी ज्यादा की ज्यादतियाँ इन शूद्रादि-अतिशूद्रों को बर्दाश्त करनी पड़ीं, तो इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं होना चाहिए। उन लोगों को जुल्म सहना पड़ा। उसकी एक-एक दास्तान सुनते ही किसी भी पत्थरदिल आदमी को ही नहीं बल्कि साक्षात् पत्थर भी पिघलकर उसमें से पीड़ाओं के आँसुओं की बाढ़ निकल पड़ेगी। और उस बाढ़ से धरती पर इतना बहाव होगा कि, जिनके पूर्वजों ने शूद्रादि-अतिशूद्रों को गुलाम बनाया उनके वंशज आज के जो ब्राह्मण-पुरोहित भाई हैं उनमें से जो अपने पूर्वजों की तरह पत्थरदिल नहीं हैं बल्कि जो अपने अन्दर के मुनष्यत्व को जाग्रत रखकर सौचते हैं, उन लोगों को यह जरूर महसूस होगा कि, यह एक जलप्रलय ही है।

हमारे दयालु अंग्रेज सरकार को शूद्रादि-अतिशूद्रों ने ब्राह्मण-पण्डि-पुरोहितों से किस-किस प्रकार का जुल्म सहा है और आज भी सह रहे हैं, इसके बारे में कुछ भी मालूमात नहीं है। वे लोग यदि इस सम्बन्ध में पूछताछ करके कुछ जानकारी हासिल करने की कोशिश करेंगे तो उन्हें यह समझ में आयेगा कि हमने हिन्दुस्तान का जो-जो भी इतिहास लिखा है उससे एक बहुत बड़े, बहुत भयंकर और बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्से को नज़रअन्दाज़ किया है। उन लोगों को एक बार भी शूद्रादि-अतिशूद्रों के दुख-दर्दों की जानकारी मिल जाये तो उन लोगों को सच्चाई समझ में आ जायेगी और बड़ी पीड़ा होगी। वे लोग अपने (धर्म) ग्रन्थों में, जहाँ भयंकर बुरी अवस्था में पहुँचाये गये और चण्ड लोगों द्वारा सताए हुए, जिनकी पीड़ाओं की कोई सीमा ही नहीं है, ऐसे लोगों की दुरवस्था को उपमा देना हो तो शूद्रादि-अतिशूद्रों की स्थिति की ही उपमा उचित होगी। उससे कवि को बहुत विषाद होगा। कुछ अच्छा भी लग जायेगा कि आज तक कविताओं में उसको शोकरस की पूरी तस्वीर श्रौताओं के मन में स्थापित करने के लिए कल्पना की ऊँची उड़ाने भरनी पड़ती थी। लेकिन अब उन्हें इस तरह की काल्पनिक दिमागी कसरत करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। क्योंकि अब उन्हें यह स्वयंभोगियों का जिन्दा इतिहास मिल गया है। यदि सही है तो आज के शूद्रादि-अतिशूद्रों के दिल और दिमाग अपने पूर्वजों की दास्तानें सुनकर पीड़ित होते होंगे, इसमें कुछ भी आश्वर्य नहीं होना चाहिए। क्योंकि हम जिनके वंश में पैदा हुए हैं, जिनसे हमारा खून का रिश्ता है उनकी पीड़ा से हमारा पीड़ित होना स्वाभाविक है।

किसी समय ब्राह्मणों की राज सत्ता में हमारे पूर्वजों पर जो भी कुछ ज्यादतियाँ हुईं उनकी याद आते ही हमारा मन घबराकर थरथराने लगता है। मन में इस तरह के विचार आने शुरू हो जाते हैं कि, यदि जिन घटनाओं की याद भी हमें इतनी पीड़िदायी है, तो जिन्होंने इन अत्याचारों को सहा है उनके मन की उस समय की स्थिति किस प्रकार की रही होगी, यह तो वे ही जान सकते हैं। इसकी अच्छी मिसाल हमारे ब्राह्मण भाइयों के (धर्म) शास्त्रों में ही मिलती है। वह यह कि, इस देश के मूल निवासी धत्रिय लोगों के साथ ब्राह्मण-पुरोहित वर्ग के मुखिया परशुराम जैसे व्यक्ति ने कितनी कूरता

बरती, यही इस ग्रन्थ में बताने का प्रयास किया गया है। फिर भी उसकी क्रूरता के बारे में इतना समझ में आया है कि, उस परशुराम ने कई क्षत्रियों को मौत के घाट उतार दिया था। और उस (ब्राह्मण) परशुराम ने क्षत्रियों की अनाथ हुई नारियों से उनके छोटे-छोटे चार-चार पाँच-पाँच माह के निर्दोष मासूम बच्चों को उनसे जबरदस्ती छीनकर अपने मन में किसी प्रकार की हिचकिचाहट न रखते हुए बड़ी क्रूरता से उनको मौत के हवाले कर दिया था। यह उस ब्राह्मण परशुराम का कितना जघन्य अपराध था। वह चण्ड इतना ही करके चुप नहीं रहा, उसने अपने पति की मौत से व्यथित कई नारियों को, जो अपने पेट के गर्भ की रक्षा करने के लिए बड़े दुखित मन से जंगलों-पहाड़ों में भागे जा रही थीं, उनका कातिल शिकारी की तरह पीछा करके, उन्हें पकड़कर लाता और प्रसूति के पश्चात् जब उसे यह पता चलता कि पुत्र की प्राप्ति हुई है, तो वह चण्ड होकर आता और प्रसूतिसुदा नारियों का कत्ल कर देता था। इस तरह की कथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलती है। और जब ब्राह्मण लोग उनके विरोधी दल के थे तब उनसे उस समय की सही स्थिति समझ में आयेगी, यह तो हमें सपने में भी नहीं सोचना चाहिए। हमें लगता है कि ब्राह्मणों ने उस घटना का बहुत बड़ा हिस्सा चुराया होगा। क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने मुँह से अपनी गलतियों को कहने की हिम्मत नहीं करता। उन्होंने उस घटना को अपने ग्रन्थ में लिख रखा है, यही बहुत बड़े आश्चर्य की बात है।

हमारे सामने यह सवाल आता है कि (ब्राह्मण) परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों को पराजित करके उनका सर्वनाश किया और उनकी अभागी नारियों के अबोध, मासूम बच्चों को भी कत्ल कर दिया, इसमें उसने बड़ा पुरुषार्थ किया और उसकी यह बहादुरी बाद में आने वाली पीढ़ियों को भी मालूम हो इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने इस घटना को अपने धर्म शास्त्रों में लिख रखा है। लोगों में एक कहावत प्रचलित है कि हथेली से सूरज को नहीं ढका जा सकता। उसी प्रकार यह हकीकत जब कि उनको शरमिन्दा करने वाली थी, फिर भी उसकी इतनी प्रसिद्धि हुई थी कि, उनसे उस घटना पर जितना परदा डालना सम्भव हो उन्होंने उतनी कोशिश की, और जब कोई इलाज ही नहीं बचा तब उन्होंने उस घटना को लिखकर रख दिया। हाँ, ब्राह्मणों ने इस घटना की जितनी हकीकत लिखकर रख दी, उसी के बारे में यदि कुछ सोच-विचार किया जाये तो मन को बड़ी पीड़ा होती है, क्योंकि परशुराम ने जब उन क्षत्रिय गर्भधारिणी नारियों का पीछा किया तब उन गर्भिणियों को कितनी यातनाएँ सहनी पड़ी होंगी? पहली बात तो यह कि नारियों को दौड़-भाग करने की आदत बहुत कम होती है। उसमें भी कई नारियाँ मोटी और कुलीन होने की वजह से जिनकी अपने घर की देहलीज पर चढ़ना भी मालूम नहीं था, घर के अन्दर उन्हें जो कुछ भी लगता था, वह सब नौकर लोग लाकर देते थे। मतलब जिन्होंने बड़ी सफलता से उनकी छत्रछाया में अपने जीवन का पालन-पोषण किया था, उन पर अब अपने पेट के गर्भ के बोझ को लेकर सूरज की चिलचिलाती धूप में टेढ़े-मेढ़े रास्तों से भागने की मुसीबत आयी। इसका मतलब यह है कि वे भयंकर विपत्ति की शिकार थीं। उनको दौड़-भाग करने की आदत बिल्कुल ही नहीं होने की वजह से पाँव को पाँव टकराते थे और कभी धड़ल्ले से चट्टान पर, तो कभी पहाड़ की खाइयों में गिरती होंगी। उससे कुछ नारियों के माथे पर, कुछ नारियों के कुहनी को, कुछ नारियों के घुटनों को और कुछ नारियों के पाँव को ठेस-खरोंच लगकर खून की धाराएँ बहती होंगी। और परशुराम पीछे-पीछे दौड़ कर आ रहा है यह सुनकर और भी भागने-दौड़ने लगती होंगी। रास्ते से भागते-दौड़ते समय उनके नाजुक पाँवों में काँटे, कंकड़ चुभते

होंगे। कँटीले पेड़-पौधों से उनके बदन के कपड़े भी फट गये होंगे और उन्हें काँटे भी चुभते होंगे। उसकी वजह से उनके नाजुक बदन से लहू भी बहता होगा। चिलचिलाती धूप में भागते-भागते उनके पाँव में छाले भी पड़ गये होंगे। और कमल के डंठल के समान नाजुक नीलवर्ण कांति मुरझा गयी होगी। उनके मुँह से फेन बहता होगा। उनकी आँखों में आँसू भर आये होंगे। उनके मुँह ने एक-एक दिन, दो-दो दिन पानी भी नहीं छुआ होगा। इसलिए बेहद थकान से पेट का गर्भ पेट में ही शोर मचाता होगा। उनको ऐसा लगता होगा कि यदि अब धरती फट जाय तो कितना अच्छा होता। मतलब उसमें हम अपने आप को झोंक देते और इस चण्ड से मुक्त हो जाते। ऐसी स्थिति में उन्होंने आँखें फाड़-फाड़ कर भगवान की प्रार्थना निश्चित रूप से की होगी कि, “हे भगवान! तूने हम पर यह क्या स्थिति ढहायी है? हम स्वयं बलहीन हैं, इसलिए हमको अबला कहा जाता है। हमें हमारे पतियों का जो कुछ बल प्राप्त था वह भी इस चण्ड ने छीन लिया है। यह सब आपको मालूम होने पर भी तू बुजदिल होकर कायर की तरह हमारे कितने इम्तिहान ले रहा है। जिसने हमारे शौहर को जान से मार डाला और हम अबलाओं पर हथियार उठाये हुए हैं और इसी में जो अपना पुरुषार्थ समझता है ऐसे चण्ड के अपराधी के अपराधों को दखकर तू समर्थ होने पर भी मुँह में उँगली दबाये पत्थर जैसा बहरा-अन्धा क्यों बना बैठा है?” इस तरह वह नारियाँ बेसहारा होकर किसी के सहारे की तलाश वाला मुँह किये ईश्वर की याचना कर रही थी। उसी समय चण्ड परशुराम ने वहाँ पहुँचकर उन अबलाओं को नहीं भगाया होगा? फिर तो उनकी यातनाओं की कोई सीमा ही नहीं रही होगी। उनमें से कुछ नारियों ने बेहिसाब चिल्ला-चिल्लाकर, चीख-चीख कर अपनी जान नहीं गँवायी होगी? और शेष नारियों ने बड़ी विनम्रता से उस चण्ड परशुराम से दया की भीख नहीं माँगी होगी कि “हे परशुराम, हम आपसे इतनी ही दया की भीख माँगना चाहते हैं कि, हमारे गर्भ से पैदा होने वाले अनाथ बच्चों की जान बच्शो, हम सभी आपके सामने इसी के लिए अपना आँचल पसार रहे हैं। आप हम पर इतना ही दया करो। अगर आप चाहते हो तो हमारी जान भी ले सकते हो। लेकिन हमारे इन मासूम बच्चों की जान न लो। आपने हमारे शौहर को बड़ी बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया है, इसीलिए हमें बेसमय वैधव्य प्राप्त हुआ है। और अब हम सभी प्रकार के सुखों से कोसों दूर चले गये। अब हमें आगे बाल बच्चे होने की कोई भी उम्मीद नहीं रही। अब हमारा सारा ध्यान इन बच्चों की ओर लगा हुआ है। अब हमें इतना ही सुख चाहिए। हमारे सुख की आशास्वरूप हमारे ये जो मासूम बच्चे हैं, उनको भी जान से मार कर हमें आप क्यों तड़फ़ड़ाते देखना चाहते हों? हम आपसे इतनी ही भीख माँगना चाहते हैं। वैसे तो हम आपके ही धर्म की सन्तान हैं। किसी भी तरह से क्यों न हो आप हम पर रहम कीजिए।” इतने करुणापूर्ण, भावपूर्ण शब्दों से उस चण्ड परशुराम का दिल कुछ न कुछ तो पिघल जाना चाहिए था। लेकिन आखिर पत्थर ही सांकेत हुआ। वह उन्हें प्रसूत हुए देखकर उनसे उनके नवजात शिशु छीनने लगा। तब वह उन नवजात शिशुओं की रक्षा के लिए उन पर औंधी गिर पड़ी होंगी और गर्दन उठाकर कह रही होंगी कि, “हे परशुराम, आपको यदि इन नवजात शिशुओं की जान ही लेनी है तो सबसे पहले यही बेहतर होगा कि हमारे सिर कटवा लो, फिर हमारे पश्चात् आप जो भी करना चाहो सो कर लो। किन्तु हमारी आँखों के सामने हमारे इन नन्हे-मुन्हे बच्चों की जान न लो।” लेकिन कहते हैं न कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है। उसने उनकी कुछ न सुनी। यह कितनी निचता! उन नारियों की गोद में खेल रहे उन नवजात शिशुओं को

जबरदस्ती छीन लिया गया होगा, तब उन्हें जो यातनाएँ हुई होंगी, जो मानसिक पीड़ाएँ हुई होंगी, उस स्थिति को शब्दों में व्यक्त करने के लिए हमारे हाथ की कलम भी थरथराने लगती है। खैर उस जल्लाद ने उन नवजात शिशुओं की जान उनकी माताओं की आँखों के सामने ली होगी। उस समय कुछ माताओं ने अपनी छाती को पीटना, बालों को नोचना और जमीन को कुरेदना शुरू कर दिया होगा। उन्होंने अपने ही हाथ से अपने मुँह में मिट्टी के ढेले ठूँसठूँस कर अपनी जान भी गँवा दी होगी। कुछ माताएँ पुत्रशोक में बैहाश होकर गिर पड़ी होंगी, उनके होश-हवास भूल गये होंगे। कुछ माताएँ पुत्र शोक के मारे पागल-सी हो गयी होंगी कि “हाय मेरा बच्चा, हाय मेरा बच्चा”, करते-करते दर-दर, गँव-गँव, जंगल-जंगल भटकती रही होंगी। लेकिन यह उम्मीद लगाये रहना फिजूल की बातें हैं कि इस तरह की सारी हकीकत हमें ब्राह्मण-पुरोहितों से मिल सकेगी।

इस तरह ब्राह्मण-पुरोहितों के पूर्वज, अधिकारी परशुराम ने सैकड़ों क्षत्रियों को जान से मारकर उनके बीवी-बच्चों के भयंकर बुरे हाल किये और उसी को आज के ब्राह्मणों ने शूद्रादि-अतिशूद्रों का सर्व शक्तिमान परमेश्वर, सारी सृष्टि का निर्माता कहने के लिए कहा है, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है। परशुराम के पश्चात् ब्राह्मणों ने इन्हें कम परेशान नहीं किया होगा। उन्होंने अपनी ओर से जितना सताया जा सकता है उतना सताने की कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी होगी। उन्होंने घृणा से इन लोगों में से अधिकांश लोगों के भयंकर बुरे हाल किये। उन्होंने इनमें से कुछ लोगों को इमारतों-भवनों की नींव में जिन्दा गाड़ देने में कोई आनाकानी नहीं की, इस बारे में इस ग्रन्थ में लिखा गया है।

ब्राह्मणों ने इन लोगों को इतना नीच समझा था कि, किसी समय कोई शूद्र नदी के किनारे अपने कपड़े धो रहा हो और इत्फाक से वहाँ यदि कोई ब्राह्मण आ जाये, तो उस शूद्र को अपने सभी कपड़े समेटकर के बहुत दूर, जहाँ से ब्राह्मण के तन पर पानी का एक मामूली कतरा भी मूँडने की कोई सम्भावना न हो, ऐसे पानी के बहाव की नीचे की जगह पर जाकर अपने कपड़े धोना पड़ता था। यदि वहाँ से ब्राह्मण के तन पर पानी की बूँद का एक कतरा भी छू गया, या उसको इस तरह का सन्देह भी हुआ, तो ब्राह्मण-पण्डा आग के शोले की तरह लाल हो जाता था और उस समय उसके हाथ में जो भी मिल जाये या अपने ही पास के बर्तन को उठाकर न आव देख न ताव देख उस शूद्र के माथे को निशाना बनाकर बड़े जोर से फेंक कर मारता था। उससे शूद्र का माथा खून से भर जाता था। वह शूद्र बेहोशी में जमीन पर गिर पड़ता था। फिर कुछ देर बाद उसे जब होश आता था तब वह अपने खून से भीगे हुए अपने कपड़ों को हाथ में लेकर बिना किसी शिकायत के, मुँह लटकाये अपने घर चला जाता था। यदि सरकार में शिकायत करे तो, चारों तरफ ब्राह्मणवादी का जाल फैला हुआ है। बल्कि शिकायत करने का खतरा यह रहता था कि खुद को ही सजा भोगने का मौका न आ जाये। अफसोस! अफसोस!! हे भगवान्, यह कितना बड़ा अन्याय है।

खैर, एक दर्दभरी कहानी है इसलिए कहना पड़ रहा है। किन्तु इस तरह की और इससे भी भयंकर घटनाएँ घटती थीं, जिसका दर्द शूद्रादि-अतिशूद्रों को बिना शिकायत के सहना पड़ता था। ब्राह्मणवादी राज्यों में शूद्रादि-अतिशूद्रों की व्यापार-वाणिज्य के लिए या अन्य किसी काम के लिए धूमना हो तो बड़ी कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़ता था, बड़ी कठिनाइयाँ बर्दाश्त करनी पड़ती थीं। इनके सामने मूसीबतों का ताँता लग जाता था। उसमें भी एकदम सुबह के समय तो बहुत भारी दिक्कतें खड़ी जो जाती

थीं। चूँकि उस समय सभी चीजों की छाया काफी लम्बी होती है। यदि ऐसे समय शायद कोई शूद्र रास्ते से जा रहा हो और सामने से किसी ब्राह्मण की सवारी आ रही है यह देखकर उस ब्राह्मण पर अपनी छाया न पड़े इस डर से कंपित होकर उसको पल दो पल अपना समय फिजुल बर्बाद करके रास्ते की एक ओर होकर वहीं बैठ जाना पड़ता था। फिर उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद उसको अपने काम के लिए निकलना पड़ता था। मान लीजिए कभी-कभार बगैर ख़्याल के उसकी छाया उस ब्राह्मण पर पड़ी तो ब्राह्मण तुरन्त क्रोधित होकर चण्ड बन जाता था और उस शूद्र को मरते दम तक पीटता रहता था और उसी वक्त नदी पर जाकर स्नान कर लेता था।

शूद्रों में से कई लोगों को (जातियों को) रास्ते पर थूकने की भी मनाही थी। इसलिए उन शूद्रों को ब्राह्मणों की बस्तियों से गुजरना पड़ा तो अपने साथ थूकने के लिए मिट्टी के किसी एक बर्तन को रखना पड़ता था। मान लीजिए उसकी थूक जमीन पर पड़ गयी और उसको ब्राह्मण-पण्डा ने देख लिया तो उस शूद्र के दिन भर गये। अब उसकी खैर नहीं। इस तरह ये लोग (शूद्रादि-अतिशूद्र जातियाँ) अनगिनत मुसीबतों को सहते-सहते मटियामेट हो गये। लेकिन अब हमें इसी बात का इन्तजार है कि, लोग इस नरक से भी बदत्तर जीवन से कब मुक्त होते हैं। जैसे किसी व्यक्ति ने बहुत दिनों तक जेल के अन्दर अपनी जिन्दगी गुजार दी हो, वह कैदी अपने साथी मित्रों से, बीवी-बच्चों से, भाई-बहनों से मिलने के लिए या स्वतन्त्र रूप से आजाद पँछी की तरह घूमने के लिए बड़ी उत्सुकता से जेल से मुक्त होने के दिन का इन्तजार करता है, उसी तरह का इन्तजार, इन लोगों को भी बेसब्री से होना स्वाभाविक ही है। ऐसे समय बड़ी खुश किस्मती कहिए, ईश्वर को उनकी दया आयी। इस देश में अंग्रेजों की सत्ता कायम हुई। और उनके द्वारा ये लोग ब्राह्मणशाही की शारीरिक गुलामी से मुक्त हुए। इसीलिए ये लोग अंग्रेजी राजसत्ता का शुक्रिया अदा करते हैं। ये लोग अंग्रेजों के इन उपकारों को कभी भूलेंगे नहीं। उन्होंने इन्हें आज सैकड़ों साल से चली आ रही ब्राह्मणशाही की गुलामी की फौलादी जंजीरों को तोड़कर के मुक्ति की राह दिखायी। उन्होंने इनके बीवी-बच्चों को सुख के दिन दिखाये। यदि वे यहाँ न आते तो ब्राह्मणों ने, ब्राह्मणशाही ने उन्हें कभी सम्मान और स्वतन्त्रता की जिन्दगी न गुजारने दी होती। इस बात पर कोई शायद इस तरह का सन्देह उठा सकता है कि, आज ब्राह्मणों की तुलना में शूद्रादि-अतिशूद्रों की संख्या करीबन दस गुना ज्यादा है। फिर भी ब्राह्मणों ने शूद्रादि-अतिशूद्रों को कैसे क्या मटियामेट कर दिया, कैसे क्या गुलाम बना लिया?

इस बात का जवाब यह है कि बुद्धिमान, चतुर आदमी दस अज्ञानी लोगों के दिलो-दिमाग को अपने पास गिरवी रख सकता है। उन पर अपना स्वामित्व लाद सकता है। और दूसरी भी बात यह है कि, वे दस अनपढ़ लोग यदि एक ही मत के होते तो उन्होंने उस बुद्धिमान, चतुर आदमी की दाल न गलने दी होती, एक न चलने दी होती। किन्तु वे दस लोग दस अलग-अलग मतों के होने की वजह से ब्राह्मणों-पुरोहितों जैसे धूर्त-पाखंडी लोगों को, उन दस भिन्न-भिन्न मतवादी लोगों को अपने जाल में फँसाने में कुछ भी कठिनाई न होती। उसी तरह शूद्रादि-अतिशूद्रों की विचारप्रणाली, मत-मान्यताएँ एक-दूसरे से मेल-मिलाप करे इसलिए प्राचीन काल में ब्राह्मणों-पुरोहितों ने एक बहुत बड़ी धूर्ततापूर्ण और बदमाशी भरी विचारधारा खोज निकाली। उन शूद्रादि-अतिशूद्रों के समाज की संख्या जैसे-जैसे बढ़ने लगी वैसे-वैसे ब्राह्मणों में डर की भावना उत्पन्न होने लगी। इसीलिए उन्होंने शूद्रादि-अतिशूद्रों में आपस में घृणा और नफरत की भावना

बढ़ती रहे इस बात की योजना तैयार की। उन्होंने समाज में प्रेम के बजाय जहर के बीज बोये। इसमें उनकी चाल यह थी कि यदि शूद्रादि-अतिशूद्र (समाज) आपस में लड़ते-झगड़ते रहेंगे तब कहीं यहाँ अपने टिके रहने की बुनियाद मजबूत रहेगी। और हमेशा-हमेशा के लिए वे लोग वंशपरम्परा से अपनी और अपने वंशजों की गुलामी में रह कर हम लोगों को बगैर मेहनत के उनके पसीने से प्राप्त कमाई पर बगैर किसी रोक-टोक के गुलबर्देर उड़ाने का मौका मिलेगा। अपनी इस चाल, विचारधारा को कामयाबी देने के लिए जातिभेद की फौलादी जहरीली दीवारें खड़ी करके, उन्होंने इसके समर्थन में अपने जाति स्वार्थ सिद्धि के कई ग्रन्थ लिख डाले।

उन्होंने इन ग्रन्थों के माध्यम से अपनी बातों को अज्ञानी लोगों के दिलो-दिमाग पर पत्थर की लकीर की तरह लिख दिया। उनमें से कुछ लोग जो ब्राह्मणों के विरोध में बड़ी कड़ाई और जिद से लड़े उनका उन्होंने एक वर्ग ही अलग कर दिया। उनसे पूरी तरह बदला चुकाने के लिए उनको और उनकी जो बाद की सन्तान होगी उनको उन्हीं लोगों ने मतलब फिलहाल जिनको माली, कुणबी, (कुर्मी आदि) कहा जाता है, उन्होंने एक-दूसरे को छूना नहीं चाहिए, ब्राह्मण-पण्डा, पुरोहितों ने एक तरह की जहरीली बातें उनके दिलो-दिमाग में भर दीं। जब यह हुआ तब इसका परिणाम यह हुआ कि उनका आपसी मेल-मिलाप बन्द हो गया। और वे लोग अनाज के एक-एक दाने के लिए मोहताज हो गये। इसलिए इन लोगों को जीने के लिए मरे हुए जानवरों का मांस मजबूर होकर खाना पड़ा। उनके इस आचार-व्यवहार को देखकर आज के शूद्र जो बहुत ही अहंकार से अपने आप को माली, कुणबी, सुनार, दरजी, लुहार, बढ़ई, (तेली, कुर्मी) आदि बड़ी-बड़ी संज्ञाएँ लगाते हैं क्योंकि वे लोग केवल इस प्रकार का व्यवसाय करते हैं। कहने का मतलब यह है कि, वे ही लोग अपने पूर्वज एक ही घराने के होते हुए भी, आपस में लड़ते झगड़ते हैं और एक-दूसरे को नीच समझते हैं। इन सब लोगों के पूर्वज स्वदेश के लिए ब्राह्मणों से बड़ी जिद से, बड़ी निर्भयता से लड़ते रहे, इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों ने इन सबको समाज के निचले स्तर पर लाकर रख दिया। और दर-दर का भिखारी बना दिया।

लेकिन अफसोस यह है कि इसका रहस्य किसी की समझ में नहीं आ रहा है। इसीलिए ये लोग ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों के बहकावे में आकर आपस में नफरत करना सीख गये। अफसोस! अफसोस!! ये लोग भगवान की निगाह में कितने बड़े अपराधी हैं! इन सबका आपस में इतना बड़ा नजदीकी सम्बन्ध होने पर भी किसी त्यौहार को ये उनके दरवाजे पर दूर से ही पका-पकाया भोजन माँगने के लिए आते हैं तो वे लोग उनको नफरत की निगाह से देखते हैं। और कभी-कभी तो हाथ में डण्डा लेकर इन्हें मारने के लिए भी दौड़ते हैं। खैर इस तरह जिन लोगों ने ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों से जिस-जिस तरह से संघर्ष किया उनसे उन्होंने उनके अनुसार उनको जातियों में बाँट कर एक तरह से सजा सुना दी है। या जातियों को दिखावटी आधार देकर सभी को पूरी तरह से गुलाम बना लिया। ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहित सबमें सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिकार सम्पन्न हो गये, है न मजे की बात! जब से ब्राह्मणों ने शूद्रादि-अतिशूद्रों में जातिभेद की भावना को पैदा किया, बढ़ावा दिया तब से उन सभी के दिलो-दिमाग आपस में उलझ गये और नफरत से अलग-अलग हो गये। ब्राह्मण-पुरोहित अपने पञ्चन्त्र में कामयाब हुए। उनको अपना मनचाहा व्यवहार करने की पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी। इस बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है कि, “दोनों का झगड़ा और तीसरे का लाभ” मतलब यह है कि

ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहितों ने शूद्रादि-अतिशूद्रों में आपस में नफरत के बीज जहर की तरह बो दिये और खुद उन सभी की मेहनत पर ऐशो आराम भोग रहे हैं।

संक्षेप में, ऊपर कहा ही गया है कि, इस देश में अंग्रेज सरकार आने की वजह से शूद्रादि-अतिशूद्रों की जिन्दगी में एक नयी रोशनी आयी, ये लोग ब्राह्मणों की गुलामी से मुक्त हुए, यह कहने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं है, फिर भी हम को यह कहने में बड़ा दर्द होता है कि, अभी भी हमारी इस दयालु सरकार ने शूद्रादि-अतिशूद्रों को शिक्षित बनाने की दिशा में गैर-जिम्मेदारीपूर्ण रवैया अखतियार करने की वजह से ये लोग अनपढ़ ही रहे। ये लोग शिक्षित, पढ़े-लिखे बन जाने की वजह से ब्राह्मणों के नकली-पाखंडी (धर्म) ग्रन्थों के, शास्त्र-पुराणों के अन्ध भक्त बनकर मन से, दिलो-दिमाग से गुलाम ही रहे। इसलिए उन्हें सरकार के पास जाकर कुछ फरियाद करके न्याय माँगने का कुछ आधार ही नहीं रहा है। ब्राह्मण-पण्डा-पुरोहित लोग अंग्रेज सरकार और अन्य सभी जाति के लोगों के पारिवारिक और सरकारी कामों में कितनी लूट-खसोट कर के खाते हैं, गुलझरे उड़ाते हैं इस बात की ओर हमारी अंग्रेज सरकार का अभी तक कोई ध्यान ही नहीं गया है। इसलिए हम चाहते हैं कि अंग्रेज सरकार को सभी जनों के प्रति समानता का भाव रखना चाहिए। और उन तमाम बातों की ओर ध्यान देना चाहिए कि, जिससे शूद्रादि-अतिशूद्र समाज के लोग ब्राह्मणों की मानसिक गुलामी से मुक्त हो सकें। अपनी इस सरकार से हमारी यही प्रार्थना है।

इस किताब को लिखते समय मेरे मित्र विनायकराव बापजी भण्डारकर और सा. राजन्नलिंगु आदि ने मुझे जो उत्साह दिया, उसके लिए मैं उनको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।

ज्योतिराव गोविन्दराव

---

\* समर्थ रामदास-मराठी संतकवि। ब्राह्मण जाती में पैदा हुए और वे ब्राह्मवाद के कटूर समर्थक रहे हैं।

(ब्राह्मणवादी धर्म की छत्राछाया में)  
गुलामगिरी

(सभ्य अंग्रेजों के राज में)  
ज्योतिराव और धोंडिराव

परिच्छेद : एक

ब्रह्मा की व्युत्पत्ति, सरस्वती और इराणी या आर्य लोगों के सम्बन्ध में।

धोंडिराव-पश्चिमी देशों के अंग्रेज, फ्रेंच आदि दयालु, सभ्य राज्यकर्ताओं ने इकट्ठा होकर गुलामी प्रथा पर कानूनन रोक लगा दी है। इसका मतलब यह है कि, उन्होंने ब्रह्मा के (धर्म) नीति-नियमों को ठुकरा दिया है। क्योंकि मनुसंहिता में लिखा गया है कि, ब्रह्मा (विराट पुरुष) ने अपने मुँह से ब्राह्मण वर्ण को पैदा किया है। और उसने इन ब्राह्मणों की सेवा (गुलामी) करने के लिए ही अपने पाँव से शूद्रों को पैदा किया है।

ज्योतिराव-अंग्रेज आदि सरकारों ने गुलामी प्रथा पर पाबन्दी लगा दी है, इसका मतलब ही यह है कि उन्होंने ब्रह्मा की आज्ञा को ठुकरा दिया है, यहीं तेरा कहना है न। इस दुनिया में अंग्रेज आदि कई प्रकार के लोग रहते हैं, उनको ब्रह्मा ने अपनी कौन-कौन-सी इन्द्रियों से पैदा किया है? और इस सम्बन्ध में मनुसंहिता में क्या-क्या लिखा गया है?

धोंडिराव-इसके सम्बन्ध में सभी ब्राह्मण मतलब बुद्धिमान और बुद्धिहीन यह जवाब देते हैं कि, अंग्रेज आदि लोग अधम, दुराचारी होने की वजह से उन लोगों के बारे में मनुसंहिता में कुछ भी लिखा नहीं गया।

ज्योतिराव-तुम्हारे इस तरह के कहने से यह पता चलता है कि, ब्राह्मणों में अधम, नीच, दुराचारी लोग बिल्कुल हैं ही नहीं?

धोंडिराव-अनुभव से यह पता चलता है कि, अन्य लोगों की तुलना में ब्राह्मण में सबसे ज्यादा अधम, नीच, दुष्ट और दुराचारी लोग हैं।

ज्योतिराव-फिर यह बताइये कि इस तरह अधम, नीच, दुष्ट, दुराचारी ब्राह्मणों के बारे में मनु की संहिता में किस प्रकार से लिखा गया है?

धोंडिराव-इस बात से यह प्रमाणित होता है कि मनु ने अपनी संहिता में जो व्युत्पत्ति सिद्धान्त प्रतिपादित किया है वह एकदम तथ्यहीन, निराधार है। क्योंकि उनका वह सिद्धान्त सारे मानव समाज पर लागू नहीं होता।

ज्योतिराव-इसीलिए अंग्रेज आदि लोगों के जानकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थकर्ताओं की बदमाशी को पहचानकर गुलाम बनाने की प्रथा पर कानूनन पाबन्दी लगा दी।

यदि यह ब्रह्मा तमाम मानव समाज की व्युत्पत्ति के लिए सही में कारण होता तो उन्होंने गुलामी प्रथा पर पाबन्दी ही नहीं लगायी होती। मनु ने चार वर्णों की उत्पत्ति लिखी है। यदि इस व्युत्पत्ति को कुल मिलाकर सभी सृष्टि क्रमों से तुलना करके देख लिया जाये तो वह आपको पूरी तरह से तथ्यहीन, निराधार ही दिखायी देगी।

**धोंडिराव-मतलब यह किस प्रकार से?**

ज्योतिराव-ब्राह्मणों का कहना है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए लेकिन कुल मिलाकर सभी ब्राह्मणों की आदि माता ब्राह्मणी ब्रह्मा के किस अंग से उत्पन्न हुई, इसके बारे में मनु ने अपनी संहिता में कुछ भी नहीं लिख रखा है। आखिर यह ऐसा क्यों?

**धोंडिराव-क्योंकि वह उन विद्वान ब्राह्मणों के कहने के अनुसार मूर्ख, दुराचारी होगीं। इसलिए फिलहाल उसे म्लेच्छ<sup>1</sup> या विधर्मियों की पंक्ति में रख दिया जाय।**

ज्योतिराव-हम भूदेव हैं, हम सभी वर्णों में श्रेष्ठ हैं, इसे हमेशा बड़े गर्व से कहने वाले इन ब्राह्मणों को जन्म देने वाली आदि माता ब्राह्मणी ही है न? फिर तू उसको म्लेच्छों की पंक्ति में किसलिए रखता है? उसको वहाँ की शराब और गोमांस की बदबू कैसे पसन्द आयेगी? बेटे, तू यह बड़ी गलत बात कह रहा है।

**धोंडीराव-आप ही कई बार सरेआम सभाओं में, व्याख्यानों में कहते हैं कि, ब्राह्मणों के आदिवंशज जो ऋषि थे वे श्राद्ध<sup>2</sup> के बहाने गौ की हत्या करके गाय के मांस के कई प्रकार के पदार्थ बनवाकर खाते थे। और अब आप कहते हैं कि, उनकी आदिमाता को बदबू आयेगी, इसका मतलब क्या है? आप अंग्रेजी राज के दीर्घजीवी होने की कामना कीजिए। और कुछ दिन के लिए रुक जाइये। तब आपको दिखाई देगा कि, आज के अधिकांश मांगलिक<sup>3</sup> भिक्षुक ब्राह्मण इस तरह का प्रयास करेंगे कि, रेसिडेण्ट, गवर्नर आदि अधिकारियों की हम पर ज्यादा से ज्यादा मेहरबानी हो इसलिए ये ब्राह्मण उनकी मेज पर के बचेखुचे गोश्त के टुकड़े बुटलेर<sup>4</sup> को भी मिलने नहीं देंगे। क्या आपको यह मालमूँ नहीं कि अब तो कई महार बुटलेर ब्राह्मणों के नाम से अन्दर ही अन्दर फुसफुसाने लगे हैं? मनु महाराज ने ही आदि ब्राह्मणी की व्युत्पत्ति के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। इसलिए इस दोष की सारी जिम्मेदारी उसी के सिर पर डाल दो। उसके बारे में आप मुझे क्यों दोष दे रहे हैं कि मैं गलत-सलत बोल रहा हूँ? छोड़िये इन बातों को आगे बताइये।**

ज्योतिराव-अच्छा, जैसी आपकी इच्छा, वही सच क्यों न हो। अब ब्राह्मण को पैदा करने वाले ब्रह्मा को जो मुँह है वह हर माह मासिक धर्म (माहवार) आने पर तीन-चार दिन के लिए अपवित्र (बहिष्कृत) होता था या लिंगायत<sup>5</sup> नारियों की तरह भस्म लगाकर पवित्र (शुद्ध) होकर घर के कामधन्धे में लग जाता था, इस बारे में मनु ने कुछ लिखा भी है या नहीं?

**धोंडिराव-नहीं। किन्तु ब्राह्मणों की उत्पत्ति का आदि कारण ब्रह्मा ही है। और उसको लिंगायत नारी का उपदेश क्या उचित लगा होगा? क्योंकि आज के ब्राह्मण लोग लिंगायतों से इसलिए घृणा करते हैं क्योंकि वे इसमें छुआँचत नहीं मानते।**

ज्योतिराव-इससे तू ही सोच सकता है कि, ब्राह्मण का मुँह, बाँहें, जाँघें और पाँव इन चार अंगों की योनि माहवार (रजस्वला) के कारण उसको कुल मिलाकर सोलह दिन के लिए अशुद्ध होकर दूर-दूर रहना पड़ता होगा। फिर सवाल पैदा होता है कि उसके घर का कामधन्धा कौन करता होगा? क्या मनु महाराज ने अपनी मनु-स्मृति में इसके सम्बन्ध में कुछ लिखा भी है या नहीं?

**धोंडिराव-नहीं।**

ज्योतिराव-अच्छा। वह गर्भ ब्रह्मा के मुँह में जिस दिन से ठहरा उस दिन से लेकर नव माह का होने तक किस जगह पर रहकर बढ़ता रहा, इस बारे में मनु ने कुछ कहा भी

है या नहीं?

धोंडिराव—नहीं।

ज्योतिराव—अच्छा। फिर जब वह ब्राह्मण बालक पैदा हुआ उस नवजात शिशु को ब्रह्मा ने अपने स्तन का दूध पिलाया या बाहर का दूध पिलाकर छोटे से बड़ा किया, इस बारे में भी मनु महाराज ने कुछ लिखा भी है या नहीं?

धोंडिराव—नहीं।

ज्योतिराव—सावित्री ब्रह्मा की औरत होने पर भी उसने (ब्राह्मणों ने) नवजात शिशु के गर्भ का बोझ अपने मुँह में नव माह तक सँभालकर उसे जन्म देने का और उसकी देखभाल करने का झमेला अपने माथे पर क्यों ले लिया? यह कितना बड़ा आश्चर्य है।

धोंडिराव—उसके (ब्रह्मा के) शेष तीन सिर इस झमेले से दूर थे या नहीं? आपकी राय इस मामले में क्या है? उस रंडीबाज को इस तरह से माँ बनने की इच्छा क्यों पैदा हुई होगी?

ज्योतिराव—अब यदि उसे रंडीबाज कहा जाय जो उसने सरस्वती नाम की अपनी कन्या से ही सम्भोग (व्यभिचार) किया था। इसलिए उसका उपनाम बेटीचोद हो गया। इसी बुरे कर्म के कारण कोई भी व्यक्ति उसका मान-सम्मान (पूजा) नहीं कर रहा है।

धोंडिराव—यदि सचमुच में ब्रह्मा को चार मुँह होते तो उसी हिसाब से उसे आठ स्तन, चार नाभियाँ, चार योनियाँ, और चार मलद्वार होने चाहिए। किन्तु इस बारे में सही जानकारी देने वाले कोई लिखित प्रमाण नहीं मिल पाये हैं। फिर उसी तरह शेषनाग की शैया पर सोने वाले को लक्ष्मी नाम की स्त्री होने पर भी उसने अपनी नाभि से चार मुँह वाले बच्चे को कैसे पैदा किया? इस बारे में यदि सोचा जाये तो उसकी भी स्थिति ब्रह्मा की तरह ही होगी।

ज्योतिराव—वास्तव में, हर दृष्टि से सोचने के बाद हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि, ब्राह्मण लोग समुद्र पार जो इराण नाम का देश है, वहाँ के मूल निवासी हैं। पहले के जमाने में उन्हें इराणी या आर्य कहा जाता था। इस मत का प्रतिपादन कई अंग्रेजी ग्रन्थकारों ने उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर किया है। सबसे पहले उन आर्य लोगों ने बड़ी टोलियाँ बनाकर के इस देश में आकर कई बर्बर हमले किये और यहाँ के मूल निवासी राजाओं के प्रदेशों पर बार-बार हमले करके बड़ा आतंक मचाया था। फिर (बटू) वामन के बाद आर्य (ब्राह्मण) लोगों का ब्रह्मा नाम का मुख्य अधिकारी हुआ। उसका स्वभाव बहुत जिदी था। उसने अपने काल में यहाँ के हमारे आदिपूर्वजों को अपने बर्बर हमलों से पराजित कर उन्हें अपना गुलाम बनाया था। बाद में उसने अपने लोगों और उन गुलामों में हमेशा-हमेशा के लिए भेद-भाव बना रहे इसलिए कई प्रकार के नीति-नियम बनवाये। इन सभी घटनाओं की वजह से ब्रह्मा की मृत्यु के बाद आर्य लोगों का मूल नाम अपने आप लुप्त हो गया और उनका नया नाम पड़ गया ‘ब्राह्मण’।

फिर मनु महाराज, जैसे (ब्राह्मण) अधिकारी हुए। उसने पहले से बने हुए और अपने बनाये हुए नीति-नियमों का क्षय बाद में भी कोई न कर पाये इस डर की वजह से ब्रह्मा के बारे में कई नयी-नयी तरह-तरह की कल्पनाएँ फैलायीं। फिर उन्होंने इस तरह के विचार उन गुलाम लोगों के दिलों-दिमाग में टूँस-टूँस कर भर दिये कि वह बातें ईश्वर की इच्छा से हुई हैं। इसलिए उन्होंने शेषनाग शैया की दूसरी अन्धी कथा (पुराण कथा) गढ़ी और समय देखकर कुछ समय के बाद उन सभी पाखण्डों के ग्रन्थ शास्त्र बनाये गये।

उन ग्रन्थों के बारे में शूद्र गुलामों को नारद जैसे धूर्त, चतुर, सदा औरतों में रहने वाले छिछोरे ने तालियाँ पीट-पीट कर उपदेश करने की वजह से यूँ ही ब्रह्मा का महत्व बढ़ गया। अब हम इस ब्रह्मा के बारे में, शेषनाग शैया करने वाले के बारे में खोज करने लगें तो उससे हमें छदाम का फायदा तो होगा नहीं, बल्कि हम दोनों का कीमती समय व्यर्थ में खर्च होगा। क्योंकि उन्होंने जानबूझकर उस बेचारे को सीधा लेटा हुआ देखकर उसकी नाभि से यह चार मुँह वाले बच्चे को पैदा करवाकर निकलवाया। मुझे ऐसा लगता है कि पहले ही औधाचित हुए गरीब पर ऊपर से पाँव देना इसमें कुछ मजा नहीं है।

## सन्दर्भ

1. अनार्य, वह मानव समाज है जो ब्राह्मणों के चातुर्वर्ण समाज से बाहर का है।
2. हिन्दुओं (ब्राह्मणों में) पितरों के सम्मान और उनकी तृप्ति के लिए शास्त्र के अनुसार या धार्मिक रस्म-रिवाजों के अनुसार किया जाने वाला धार्मिक विधि जैसे—तपर्ण, पिण्डदान, ब्राह्मणों को भोजन कराना। श्राद्ध एक सांस्कृतिक परम्परा नहीं बल्कि हिन्दुओं की धार्मिक विधि है। इसका प्रारम्भ ब्राह्मण पुरोहितों ने अपने स्वार्थ के लिए किया था।
3. मांगलिक—मराठी में इसके लिए ‘सोवळे-ओवळे’ शब्द का प्रयोग किया गया जाता है।
4. बूटलेर—अंग्रेजों के घर खाना पकाने वाले—खानसामा।
5. लिंगायत—एक शैव सम्प्रदाय, जिसका जन्म दक्षिण भारत में हुआ है। ब्राह्मण लोग लिंगायतों से इसलिए घृणा करते हैं क्योंकि वे छुआचूत नहीं मानते।